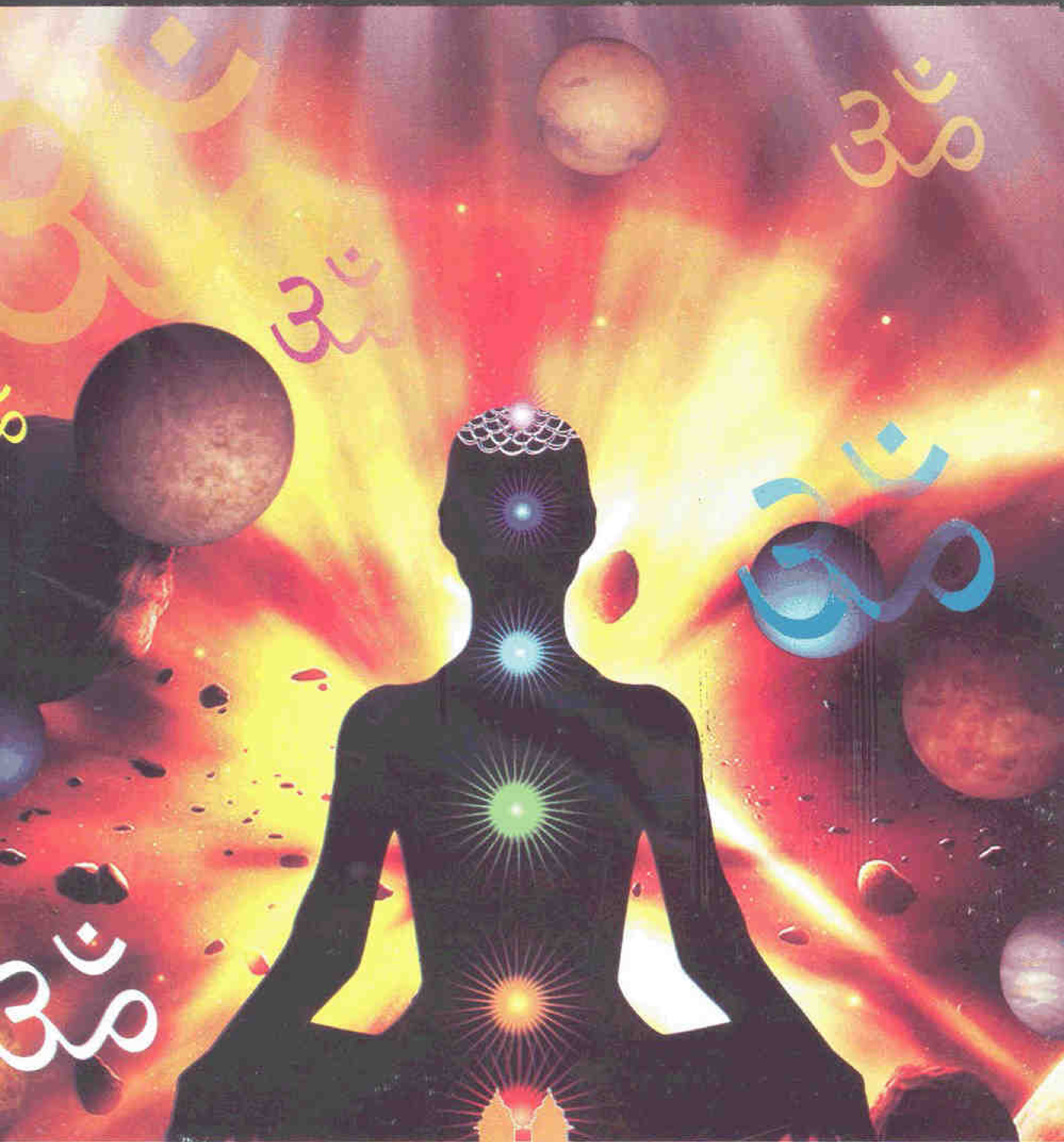
समूह साधना वर्ष
२०१४

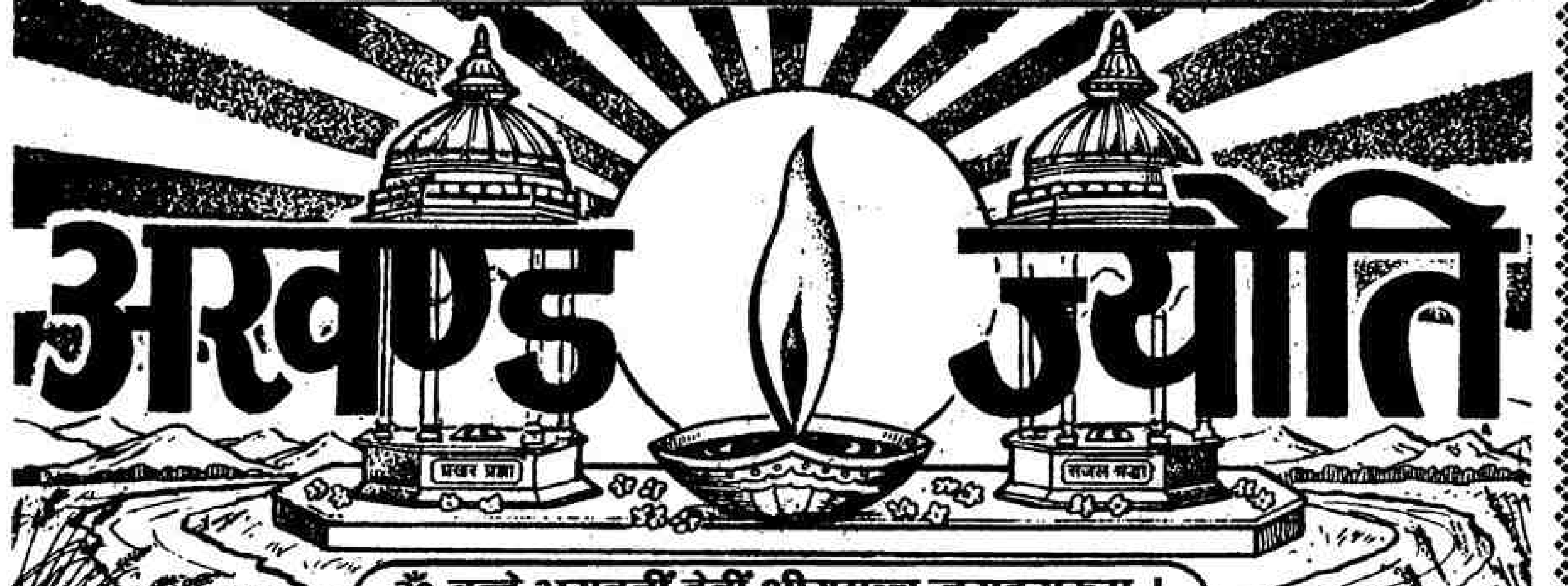
धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

— ७८, अंक—८ ₹ १२०/- वार्षिक अगस्त—२०१४



ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।
उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।



ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा माता
भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा

दूरभाष नं०(०५६५) २४०३९४०
२४००८६५, २४०२५७४
मोबाइल नं० ९९२७०८६२९१
७५३४८१२०३७
७५३४८१२०३८
७५३४८१२०३९
फैक्स नं० (०५६५)२४१२२७३
ईमेल- ajsansthan@awgp.org
प्रातः १० से सायं ६ तक

वर्ष	: ७८
अंक	: ८
अगस्त	: २०१४
श्रावण-भाद्रपद	: २०७१
प्रकाशन तिथि	: १.७.२०१४
वार्षिक चंदा	
भारत में	: १२०/-
विदेश में	: १२००/-
आजीवन	: २४००/-
(सुरक्षा निधि)	

ध्यान

ध्यान न हो जीवन में, तो पागलपन स्वाभाविक है। बात अटपटी है, पर गहराई में उतरें तो इसका सच स्पष्ट हो जाता है कि जीवन की दो ही संभव दिशाएँ हैं—ध्यान अथवा पागलपन। जो ध्यान में नहीं पहुँचते, वे स्वतः ही पागलपन में पहुँच जाते हैं। वे पागल जो पागलखानों में हैं और वे जो बाहर हैं, इनमें अंतर केवल मात्रा का है। कोई गुणात्मक अंतर नहीं है, मात्रा का ही अंतर है। हो सकता है बाहर के लोग थोड़ा कम पागल हों और जो पागलखानों में हैं, वे थोड़ा ज्यादा।

पागलपन का अर्थ कई चीजों से है। इनमें से पहली चीज है—केंद्रित न होना। ऐसी दशा में कई स्वर गूँजते रहते हैं भीतर। व्यक्ति अपने अंतर्मन में एक न होकर भीड़ में बदला हुआ है। अस्तव्यस्तता, द्वंद्व और अनवरत संघर्ष चलता रहता है। गृहयुद्ध की स्थिति बनी रहती है स्वयं में। यदि यह गृहयुद्ध न होता तो ध्यान में उतरना संभव था। किसी को इस स्थिति की सचाई परखनी हो तो वह केवल कुछ क्षणों तक अपने मन में चलने वाली हर बात लिख ले। लिखने में पूरी ईमानदारी बरते, फिर पढ़कर स्वयं ही अनुभव करे कि जो लिखा गया है, वह निरी विक्षिप्तता के सिवा कुछ भी नहीं।

खलील जिब्रान ने एक छोटी-सी कथा लिखी है। इस कथा में उसने लिखा है कि उसका एक मित्र अचानक एक दिन पागलखाने में रहने चला गया। वह जब उससे मिलने गया तो उसने देखा उसका वह मित्र पागलखाने के बाग में एक पेड़ के नीचे बैठा मुस्करा रहा था। पूछने पर उसने कहा—"मैं यहाँ बड़े मजे से हूँ। मैं बाहर के उस बड़े पागलखाने को छोड़कर इस छोटे पागलखाने में शांति से हूँ। यहाँ पर कोई किसी को परेशान नहीं करता। किसी के व्यक्तित्व पर कोई मुखौटा नहीं है। जो जैसा है, वह वैसा है। न कोई आडंबर है और न ढोंग।"

यह कहकर उसने खलील जिब्रान को आश्चर्य में डालते हुए कहा—"मैं यहाँ पर ध्यान सीख रहा हूँ; क्योंकि मैं यह जान गया हूँ कि ध्यान ही सभी तरह के पागलपन का स्थायी व कारगर उपचार है। यही सही विधि है, स्वयं को खोजने की और स्वस्थचित्त होने की।" ✿

▶समूह साधना वर्ष◀

विषय सूची

आवश्यक सूचना

सभी सदस्यों को सूचित किया जा रहा है कि इस वर्ष के समापन के साथ ही अखण्ड ज्योति का वार्षिक चंदा १२० रुपये के स्थान पर १८० रुपये होगा। इसका मुख्य कारण यह है कि जिस कागज पर पत्रिका छपती है, उसकी गुणवत्ता बढ़ाई जा रही है। पत्रिका सँभालकर रखी जा सके इसके लिए कवर भी मोटा होगा और अंदर के पृष्ठ अच्छी क्वालिटी के होंगे। इसे काफी वर्षों तक सँजोकर रखा जा सकेगा। उसका नमूना यह अगस्त अंक है। इसे देखें और राय भेजें कि क्या ऐसा करना उचित होगा?

पत्र संपादक के नाम शांतिकुंज हरिद्वार, उत्तराखंड भेजें।

अगस्त - सितंबर, २०१४ के पर्व-त्योहार

शुक्रवार	०१ अगस्त	नाग पंचमी
शनिवार	०२ अगस्त	सूर्य षष्ठी
रविवार	०३ अगस्त	तुलसी जयंती
गुरुवार	०७ अगस्त	पवित्रा एकादशी
रविवार	१० अगस्त	रक्षाबंधन / श्रावणी पूर्णिमा
बुधवार	१३ अगस्त	बहुला चौथ
शुक्रवार	१५ अगस्त	स्वतंत्रता दिवस / हल षष्ठी
रविवार	१७ अगस्त	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
गुरुवार	२१ अगस्त	अजा एकादशी
सोमवार	२५ अगस्त	सोमवती अमावस्या
गुरुवार	२८ अगस्त	हरितालिका व्रत
शुक्रवार	२९ अगस्त	गणेश चतुर्थी
शनिवार	३० अगस्त	ऋषि पंचमी
रविवार	३१ अगस्त	सूर्य षष्ठी / बलभद्र षष्ठी
शुक्रवार	०५ सितंबर	जलझूलनी एकादशी
सोमवार	०८ सितंबर	महालयारंभ / महाप्रयाण दिवस परम वंदनीया माताजी
मंगलवार	१६ सितंबर	जीवत्पुत्रिका व्रत
बुधवार	१७ सितंबर	विश्वकर्मा जयंती / मातृ नवमी
शुक्रवार	१९ सितंबर	इंदिरा एकादशी
मंगलवार	२३ सितंबर	सर्वपितृ अमावस्या
गुरुवार	२५ सितंबर	नवरात्रारंभ
मंगलवार	३० सितंबर	सूर्य षष्ठी

►समूह साधना वर्ष◄

विशिष्ट सामयिक चिंतन

राष्ट्रीय सुविचार का मंत्र है गायत्री



स्वाधीनता दिवस की खुशहाली सब तरफ है। सुदीर्घ रजनी के बाद सुहानी सुबह की किरणें आई हैं। ऐसा लगता है जैसे नए युग का सूत्रपात हुआ है। देशवासियों की उम्मीदें फिर से जगी हैं, उनकी आँखों में आशाएँ चमकी हैं। लगभग तीन दशक के बाद देश की जनता ने सुशासन के लिए स्पष्ट जनादेश दिया है। इन तीस सालों में राष्ट्रीय राजनीति में, देश के जन-गण-मन में अनेक समीकरण बने और मिटे। विशेषज्ञ, विद्वान अपनी चर्चा व चिंतन में कहने लगे थे कि अब स्पष्ट जनादेश का जमाना नहीं रहा।

भाषा, धर्म, मजहब, जाति, क्षेत्र में बाँटी गई जनता अपने बाँटने वाले राजनेताओं पर भरोसा खो चुकी है। विश्वास के अभाव में उसके मत बँटते, बिखरते और खंडित होते हैं। इसी का परिणाम होता है खंडित जनादेश, लेकिन अब की बार हुए आम चुनावों में जनता ने बँटने, बिखरने से इनकार कर दिया। उसने फिर से एक बार राजनेताओं को अवसर दिया। यह अवसर किसी व्यक्ति विशेष अथवा किसी राजनीतिक पार्टी के सत्तासुख के लिए नहीं है। यह अवसर है सुशासन के लिए, नेतृत्व क्षमता को सही मायने में प्रदर्शित व परीक्षित करने के लिए।

देश की जनता ने जताया और बताया कि राष्ट्र हमारा है एवं हम सब राष्ट्र के हैं। भारत की जनता की इन भावनाओं को समस्त विश्ववासियों ने देखा, सराहा और चमत्कृत हुए। न्यूयार्क की वी० मिशेल ने 'न्यूयार्क टाइम्स' में इसके बारे में लिखा—'यह सही मायने में पृथ्वी पर सबसे बड़ा चुनाव कार्यक्रम है। एक विविध और लोकतांत्रिक लोकाचार के लिए एक श्रेष्ठ स्तुतिगान है। जहाँ ७० करोड़ से भी ज्यादा मतदाताओं ने भविष्य के लिए, अपनी प्राचीन सभ्यता को निर्देशित करने के लिए अपना योगदान दिया। अस्थिरता व आतंक फैलाने वाले अपने पड़ोसी देशों के क्रियाशील रहते हुए भी यहाँ का चुनाव सफलतापूर्वक संपन्न होना कम प्रभावशाली बात नहीं है।

विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारत के सामने जो चुनौतियाँ विशेषकर आतंकवाद पर अंकुश और विकास के संबंध में हैं, वे विशालतम हैं। किंतु इन चुनौतियों तथा अपने इन पड़ोसी देशों की गतिविधियों के बावजूद यह एक विलक्षण तथ्य है कि भारत ही इस धरती पर एक ऐसा विविधतापूर्ण देश है, जहाँ भाषाओं, बोलियों, विश्व के समस्त धर्मों और संस्कृतियों का न केवल अस्तित्व है, बल्कि यह समग्र प्रगति की ओर अग्रसर है।

विदेशियों को इस तरह से आश्चर्यचकित करने वाले देश और उसकी जनता ने इस चुनाव में स्पष्ट कर दिया है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है। इसी के साथ यह भी साबित हो चुका है कि इक्कीसवीं सदी में उज्ज्वल भविष्य भारत देश और उसकी जनता का नैसर्गिक व मौलिक अधिकार है।

जिस समय इन पंक्तियों को अपने परिजन व पाठक पढ़ रहे होंगे, उस समय माननीय प्रधानमंत्री लालकिले की प्राची से राष्ट्र को संबोधित कर रहे होंगे अथवा ऐसा करने की तैयारी कर रहे होंगे। राष्ट्र के जन गण मन की उम्मीदें व आशाएँ उनके व उनके सहयोगियों के लिए चुनौतियाँ हैं, जिन पर खरा साबित होने की जिम्मेदारी उन पर है। इन सबमें सर्वोपरि है—(१) सीमा सुरक्षा—देश की थल, जल व नभ सीमाएँ, हालाँकि सुरक्षित हैं, फिर भी कहीं न कहीं किसी न किसी छोर से घुसपैठ की घटनाएँ आतंकित करती रहती हैं। देश के सैनिकों के साथ भी बीते दिनों ऐसी अप्रिय व अपमानजनक घटनाएँ घटित हुई हैं, जिनसे जवानों के मनोबल पर असर पड़ने की संभावना बन गई थी। इन सबसे कुशलतापूर्वक व सफलतापूर्वक निबटना होगा। तभी जवानों व जनता का मनोबल बढ़ेगा।

(२) इसी का दूसरा पहलू है—आंतरिक सुरक्षा—आतंकवाद, नक्सलवाद, माओवाद जैसी समस्याएँ, रोग की तरह राष्ट्र की जीवनीशक्ति को खाए जा रही हैं। चोरी, डकैती, लूटमार, हत्या, बलात्कार भी कुछ ऐसी ही समस्याएँ हैं, जिनसे सामान्य जनजीवन आतंकित होता

रहता है। प्राचीन भारतीय शास्त्रों में सुशासन से संबंधित एक अति सुंदर विचार का उल्लेख कई स्थानों पर कई तरह से किया गया है। इसके अनुसार यदि स्वर्ण व हीरक आभूषणों से सज्जित नारियाँ अर्द्धरात्रि में नगर या गाँव में कहीं भी निश्चिंतता के साथ भ्रमण कर सकें तो ही समझना चाहिए कि वहाँ पर सुशासन स्थापित हो सका है। रोज के समाचारपत्र जब बेटियों के बलात्कार की खबरें प्रकाशित करते हैं, तो उन्हें पढ़ना अतियातनापूर्ण होता है। सचमुच सुशासन राष्ट्र में सम्यक व संपूर्णता में स्थापित व परिभाषित होना चाहिए।

(३) इन चुनौतियों का तीसरा पहलू है—महँगाई—यह जनसामान्य की सामान्य व विशिष्ट समस्या है। विशेषज्ञ इसे कई ढंग से देखते व सोचते हैं। उनके विशलेषण इसे अनजाने में विशिष्ट बना देते हैं। हालाँकि इससे जूझना पड़ता है—सामान्य गृहणियों, मजदूरों व सामान्य आदमी को। इसलिए इसे सामान्य समस्या कहना त्रुटिपूर्ण न होगा। प्रथम स्वाधीनता दिवस से वर्तमान स्वाधीनता दिवस तक यह चर्चित विषय रहा है, लेकिन इसके समाधान कारगर तरीके से नहीं ढूँढ़े गए हैं; जबकि बात बड़ी सीधी-साधी व साफ है—उत्पादन, वितरण व विनिमय की व्यवस्था के अवरोधों को यदि दूर किया जाए तो महँगाई को काफी हद तक नियंत्रित व नियमित किया जा सकता है। हालाँकि इस समस्या के कुछ और भी पहलू हैं, जो विचारणीय हैं, फिर भी स्थितियों को किसी भी तरह काबू तो करना ही होगा, अन्यथा देशवासी खुशहाल नहीं हो सकते।

(४) इसका चौथा पहलू है—भ्रष्टाचार—महँगाई के कारण भ्रष्टाचार है अथवा भ्रष्टाचार के कारण महँगाई, इसका निराकरण ठीक-ठीक से करना मुश्किल है। यह पहेली जटिल जरूर है, पर इतनी बात तो साफ है कि दोनों परस्पर घनिष्ठता से जुड़े हैं। भ्रष्टाचार से जुड़े लोग स्वयं के सुख, स्वयं की सुविधा, स्वयं के वैभव से अधिक सोच नहीं पाते। राष्ट्रीय व सामाजिक दायित्वों से उन्होंने मुँह मोड़ लिया है। इस सत्य को सार रूप में कहें तो भ्रष्टाचार संवेदनहीनता की पराकाष्ठा व परिभाषा है। इस समस्या का समाधान दंड के साथ उनमें समझ पैदा करने में है। संवेदनाओं की समझ, दूसरों के दुःख-दरद की अनुभूति से इस पर अंकुश लगा पाना संभव है। यह सत्य जितना दुःखद है, उतना ही शरमनाक भी कि त्यागी तपस्वियों व मनस्वियों के देश भारत को भ्रष्टाचार से आज पहचाना जाता है, परिभाषित किया जाता है। इसे दूर किए बिना सुशासन को परिभाषित करना संभव नहीं है।

(५) इसी महँगाई व भ्रष्टाचार से जुड़ा पाँचवाँ पहलू है— अर्थव्यवस्था—इसे लेकर विशेषज्ञ, विद्वान तरह-तरह की माथापच्ची करते रहते हैं। वर्तमान विश्व का कोई कोना हो, सभी जगह के राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय समीकरण इसी मुद्दे को लेकर बनते-बिगड़ते रहते हैं। भारतीय परिदृश्य में इसे समृद्ध भारत-खुशहाल भारत के रूप में जाना, समझा, परखा एवं आँका जाना चाहिए। इस संदर्भ में ध्यान देने की यह विशेष आवश्यकता है कि समृद्धि एवं खुशहाली किसी वर्ग विशेष एवं क्षेत्र विशेष तक सीमित व सिमटी न रहे।

जिस तरह कृषि भूमि की सिंचाई के समय किसान यह ध्यान रखता है कि खेत में सभी जगह पानी पहुँचे, सभी पौधे सिंचित हों, ठीक उसी तरह अर्थव्यवस्था के बारे में सोचा जाना चाहिए। बाजार व व्यापार अर्थव्यवस्था का एक पक्ष यह है कि इसे समग्र नहीं कहा जा सकता। इसी तरह समृद्धि जब तक खुशहाली से नहीं जुड़ती तब तक उसे संपूर्ण नहीं माना जा सकता। जब समृद्धि व खुशहाली देश के जन-जन तक पहुँचेगी तभी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को परिपक्व व सुदृढ़ माना जाना चाहिए। हम सभी भारतवासियों के सपने इसी से जुड़े हुए हैं।

(६) इसी से जुड़ा एक अन्य पहलू है—रोजगार की समस्या—देश का युवा आज इस महामारी से ग्रस्त व त्रस्त है। हर साल इसका संक्रमण बढ़ता जाता है। विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय प्रतिवर्ष चाहे-अनचाहे इसकी संख्या में वृद्धि करते हैं। युवा देश की शक्ति है, राष्ट्रीय विकास का अमूल्य संसाधन है। जिस देश की यह शक्ति एवं ऐसा अमूल्य संसाधन यों ही व्यर्थ होता रहे, उसके भविष्य पर स्वाभाविक ही अनेक प्रश्न उठ खड़े होते हैं। राष्ट्रीय प्रशासन के लिए यह सबसे बड़ी चुनौती है और राष्ट्र के युवाओं के लिए यही बड़ी उम्मीद व आशा है। रोजगार-सृजन हो अथवा स्वरोजगार की योजनाएँ, इन पर तत्काल प्रभाव से काम करने की आवश्यकता है। इसके समाधान से ही राष्ट्रीय गौरव व राष्ट्रीय सामर्थ्य की अभिवृद्धि हो सकेगी।

(७) इन चुनौतियों का अन्य पहलू—अंतरराष्ट्रीय संबंध है। यह ऐसा पहलू है, जिससे राष्ट्रीय गौरव व राष्ट्रीय सम्मान परिभाषित होता है। सुबह के समाचारपत्रों

में जब यह पढ़ने को मिलता है कि अमुक देश ने हमारी राष्ट्रीय सीमा का उल्लंघन किया अथवा देश की ओर आँखें तरेरीं तो बड़ा पीड़ादायक लगता है। इसी तरह से ऋणों व सहायताओं के लिए जब अन्य देशों से गुहार लगाई जाती है तो इन खबरों को पढ़कर शरम आती है। हमारे राष्ट्र के सम्मानित व्यक्ति जब किसी देश में पहुँचते हैं और वहाँ पर उनकी अपमानजनक ढंग से तलाशी ली जाती है तो बड़ी बेबसी का अनुभव होता है।

इस समस्या के कई पहलू हैं और इनमें अनेकों जटिलताएँ भी हैं। इस सत्य की अनुभूति के बावजूद यह उम्मीद तो की ही जाती है कि भारतवासी और विदेशों में बसे भारतवंशी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वयं को सम्मानित व गौरवान्वित महसूस करें। इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए अंतरराष्ट्रीय संबंधों की सर्वथा नवीन परिभाषा गढ़ने की जरूरत है।

(८) इन चुनौतियों का अगला पहलू—बँटवारे की बेतरतीब रेखाओं से जुड़ा है। हमारे देश ने स्वाधीनता के समय बँटवारे का दरद झेला था। उसकी असहनीय पीड़ा प्रत्येक देशभक्त के मन में अभी भी है। अब सीमाओं के विभाजन की संभावना न भी हो तो भी सामाजिक स्तर पर इसके लिए कुचक्र अभी भी रचे जाते हैं। जाति, धर्म, मजहब, भाषा, क्षेत्र और भी ऐसे अनेक कारण हैं, जिन्हें तरह-तरह से गिनाया व औचित्यपूर्ण ठहराया जाता है। इन कारणों से और इन्हें कार्यान्वित करने के तौर-तरीकों से निबटा जाना चाहिए। हम राष्ट्र के हैं और राष्ट्र हमारा है, यही प्रत्येक भारतवासी का सर्वोच्च जीवनमूल्य होना चाहिए। जो राष्ट्र के भौगोलिक, सांस्कृतिक व सामाजिक स्वरूप को विभाजित करे, उसे हर कीमत पर दूर करना होगा। इस पर देश के सामान्यजन व राष्ट्र के नायकों को मिलकर विचार करना चाहिए।

ये सभी चुनौतियाँ संपूर्ण देशवासियों की उम्मीदों व आशाओं से जुड़ी हैं। राष्ट्रवासियों का मन इनमें पिरोया है। इनके समाधान की डगर परिस्थिति एवं मन:स्थिति के अनुसार अनेकों हो सकती हैं। समय के अनुसार इनमें परिवर्तन भी किया जा सकता है, पर इसका लक्ष्य एक ही होना चाहिए—एकता, समता, शुचिता। एकता राष्ट्रवासियों की भावनाओं की, समता उनकी खुशहाली की और शुचिता उनके व्यवहार व जीवनशैली की। इसे राष्ट्रीय सुविचार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। हम सबके द्वारा नित्य मननीय गायत्री महामंत्र को राष्ट्रीय परिदृश्य में इसी रूप में समझाया व अपनाया जाना चाहिए।

गायत्री महामंत्र में उच्चरित किया जाने वाला ॐ राष्ट्रीय ध्वज का चक्र है, जो युगांतरीय परिवर्तन का प्रतीक है। इसके **भूर्भुवः स्वः** तिरंगे के तीन रंग हैं, जो धरती, अंतरिक्ष व स्वर्ग में अपनी छटा बिखेरते हैं। इसके बाद **तत्सवितुर्वरेण्यं** के रूप में पढ़ा जाने वाला गायत्री महामंत्र का प्रथम चरण एकता का संदेश देते हुए बताता है कि प्रकाश का, श्रेष्ठता का वरण करने पर ही राष्ट्रीय एकता संभव है। इसका द्वितीय चरण—**भर्गो देवस्य धीमहि** का संकेत हम सबके द्वारा धारण किए जाने वाले परमात्मा के उस तेज व ऐश्वर्य के रूप में है, जो देशवासियों के जीवन में समृद्धि व खुशहाली के रूप में समान रूप से विद्यमान रहे। गायत्री महामंत्र का तृतीय चरण—**धियो यो नः प्रचोदयात्** अर्थात सन्मार्गगामी बुद्धि, शुचिता का प्रतीक है। यह सुविचार हम सबका राष्ट्रीय आदर्श है, जिसे अपनाकर सभी चुनौतियों का सामना करना संभव है।

राष्ट्र के स्वाधीनता दिवस की भावनाओं से जुड़ी हुई एक स्मरणीय बात यह भी है कि राष्ट्र की प्रत्येक चुनौती केवल सरकार की नहीं है, बल्कि प्रत्येक देशवासी की है। देशवासियों की जागरूकता एवं कर्त्तव्यपरायणता से देश परिभाषित एवं प्रकाशित होता है। इक्कीसवीं सदी के बढ़ते कदमों के साथ इसकी जरूरत और भी बढ़ गई है। ऐसे में हम सब देशवासी मिलकर अपने उज्ज्वल भविष्य के गंतव्य की ओर पूरी दृढ़ता व साहस के साथ बढ़ने का संकल्प लें तो ही हमारा यह राष्ट्रीय पर्व गौरवान्वित होगा और हम सबको गौरवान्वित करेगा।

ज्ञातव्य

डाकघर में बैगों की कमी, डाक वाहन की कमी, स्टॉफ की कमी आदि कारणों से पत्रिकाएँ पाठकों को विलंब से मिल रही हैं। व्यवस्था तंत्र पूरा प्रयास कर रहा है कि कठिनाइयाँ दूर हों। आशा है आगामी मासों में सुधार होगा। परिजनों को हो रही कठिनाई का हमें खेद है।

कैसे बनें अपने भाग्य के निर्माता?



मनुष्य का जीवन विभिन्न कर्म संस्कारों की गति के अनुसार चल रहा है। चित्त की अनंत गुहाओं में अनवरत संस्कारों का आवागमन चलता रहता है। एक ओर से नए कर्मबीज आते हैं और दूसरी ओर से परिपाक हुए कर्मबीज, जीवन की सतह पर आकर प्रभाव छोड़ते हुए नष्ट हो जाते हैं। हमारा 'वर्तमान' संस्कारबीज के दोनों छोरों से बँधा है। वर्तमान के कर्म-व्यापार से प्रारब्ध कटता है और भविष्य गढ़ा जाता है। हम कर्मबीजों की अनंत शृंखला के मध्य खड़े हैं।

ऐसे में यदि इन संस्कारबीजों की हमको समझ न हो तो ये जीवन मात्र अवचेतन से प्रभावित होकर रह जाता है और उसे कोई समर्थ दिशा दे पाना संभव नहीं हो पाता। उस स्थिति में बस, भाग्य और परिस्थितियों के हाथों का खिलौना मात्र रह जाता है—ये जीवन। वर्तमान के सुख-दु:ख पर, उतार-चढ़ाव पर, हमारा कोई वश नहीं चलता, परंतु यदि इन संस्कारबीजों के रहस्य को जान लिया जाए तो हम अपने प्रारब्ध और भाग्यजनित विवशता से बाहर निकल सकते हैं और अपने भाग्य का निर्माण स्वयं कर सकते हैं।

यदि हम नियति का खिलौना मात्र न बनकर अपनी जिंदगी के स्वामी स्वयं बनना चाहते हैं तो फिर हमें अपने संस्कारबीजों को परखना आरंभ कर देना चाहिए। हमारे सामान्य जीवन को वह संस्कारबीज सबसे ज्यादा प्रभावित करता है, जो कामनाओं-वासनाओं से विनिर्मित हुआ है। इसका अंकुरण और आवेग हमारी प्राण चेतना की लय को गहराई में विचलित करता है, सुप्त अहंकार को उत्तेजित करता है। मन-बुद्धि की प्रखरता को अपने आकर्षण की तीव्र मायावी चादर से ढक लेता है। हमारे कर्म की प्रेरक प्रवृत्तियों को गुलाम बना लेता है। यही वासनाजन्य संस्कारबीज व्यक्ति की जीवन-ऊर्जा को उद्दीप्त कर निरर्थक लक्ष्य के पीछे भटकाता है। मृगतृष्णा की भाँति अतृप्तता भरी हुंकार लिए व्यक्ति जीवन भर चलता है; और पहुँचता कहीं नहीं है।

एक बार ही सही, व्यक्ति इस चक्र में फँस गया तो फिर उत्थान के सारे मार्ग स्वत: बंद होते चले जाते हैं। और ऐसी स्थिति में इन संस्कारबीजों से उबरने के लिए जन्म-जन्मांतरों का समय भी कम पड़ जाता है। इनके होने से जीवन की आत्मभूमि पर नानाविध भवरोग उत्पन्न करने वाली कामनाओं का संक्रमण होता है, अनेक तरह की इच्छाएँ-वासनाएँ इसका सिंचन करती हैं और अहंकार निरंतर इनकी सुरक्षा की चेष्टा करता है।

संस्कारबीज की फसल बढ़ती है, लहराती है, विकसित होती है, अत्यंत आकर्षक व लुभावनी भी लगती है, परंतु तभी तक, जब तक जीवन-ऊर्जा से सिंचित होती है। जीवन-ऊर्जा के चुक जाने पर सब कुछ उलट जाता है। आत्मसत्ता का साम्राज्य चहुँ ओर से निराशा, घुटन, कुंठा, उद्वेग, शोक-संताप आदि अनेकानेक क्लेशकारी सेनाओं से घिर जाता है। जीवन का स्वरूप बड़ा दयनीय, विद्रूप और भयावह बन जाता है। व्यक्ति इन संस्कारबीजों के आघातों से छटपटाता है, दुखी और बेचैन रहता है, परंतु एक पल के लिए भी यह नहीं सोच पाता कि जीवन की ऐसी दुर्गति का कारण भीतर ही है और इसके समाधान का उपाय भी व्यक्ति स्वयं ही है।

आज हर कोई जीवन में सुख की आकांक्षा करता है, खुशियों को तलाशता है। सही भी है, आखिर जीवन में सुख का आ जाना, खुशियों का भर जाना ही तो सार है, परंतु ऐसा शायद ही हो पाता है। हम सारा जीवन खुशियाँ तलाशने में लगा देते हैं, किंतु फिर भी भीतरी जीवन में दु:ख, अवसाद, कुंठाओं जैसी प्रवृत्तियाँ पल-पल बढ़ रही होती हैं। यह सभी का नहीं, तब भी अधिकांश का सच है। हम खोज करें सुख की, बीज बोएँ खुशियों के और हमारे हिस्से में आएँ दु:ख, अनेक पीड़ाओं की फसल, ऐसा कैसे हो सकता है? आम बोने पर बबूल कैसे उग सकता है? प्रकृति और परमात्मा का विधान कभी गलत नहीं हो सकता। अवश्य ही हमसे कहीं चूक हो रही है। सुख-शांति के भ्रम में दु:ख-क्लेश के बीज बोए जा रहे हैं।

जिंदगी के इस भ्रम से, ऐसे विरोधाभास से बाहर आने के लिए एक ही मार्ग है—वह है, संस्कारबीजों का शोधन। हम जहाँ खुशियों की—सुख और आनंद की फसल उगा सकते हैं, उस स्थान का नाम है—आत्मभूमि। इस भूमि पर चित्त नामक किसान खेती करता है। इस किसान की झोली में जैसे बीज मौजूद रहते हैं; वह जस-का-तस बो देता है। फिर इन्हीं के अनुरूप फसल उगती है और सुख-दु:ख रूपी परिणाम देती है। यदि चित्त की पोटली में शुभ कर्म, शुभ विचारों, अच्छी वृत्तियों के संस्कारबीज होंगे, तो सुनिश्चित जीवन में चहुँ ओर खुशहाली की फसल ही लहराएगी।

हमें यह ध्यान रखना होगा कि हमारा प्रत्येक कर्म, विचार, भाव एक संस्कार को जन्म देता है। ये संस्कार जहाँ एकत्र रहते हैं—उसी का नाम चित्त है। यह असंख्य अच्छे-बुरे संस्कारों का जखीरा है। ये संस्कार ही हमारे भाग्य और भविष्य के, सुख और दु:ख के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। चित्त की गुहा में बीज रूप में स्थित ये संस्कार ही समय आने पर सुनिश्चित परिणाम देते हैं, फिर चाहे वह अच्छा हो या बुरा। हम अपने लिए जिन सुखों की—खुशियों की कामना करते हैं, उनका सारा रहस्य इन संस्कारबीजों में मौजूद है। अत: सुख-सुकून की इच्छा-कल्पना कर लेने मात्र से हम इसे प्राप्त नहीं कर सकते। केवल इच्छाओं-आकांक्षाओं के सहारे खुशियों को नहीं तलाशा जा सकता। ऐसा कभी कहीं नहीं हुआ है। जीवन में जहाँ भी सुख है, खुशियाँ है, वह सिर्फ और सिर्फ, शुभ विचारों, पुण्य कर्मों और श्रेष्ठ भावों से विनिर्मित संस्कारबीजों का ही सुफल है।

हमारे साथ यही एक विडंबना जुड़ी है कि इसी क्षण वर्तमान को तो हम असंख्य कामनाओं, वासनाओं व स्वार्थ-अहंजन्य वृत्तियों के अधीन कर देते हैं और इच्छा-आकांक्षा सुखद भविष्य की करते हैं। यह समझ ही नहीं पाते कि अभी के इस क्षण से ही हमारे भाग्य-भविष्य की डोर बँधी है। परमपूज्य गुरुदेव का कथन है कि "मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है"। एक भाग्य निर्माता के रूप में हमारे समक्ष सबसे बड़ी चुनौती इस वर्तमान क्षण को जी लेने की है। अभी जैसा जिएँगे, वैसा ही संस्कारबीज बनेगा और भविष्य को फलित करेगा। तो क्यों न हम वर्तमान के पल को संकल्पपूर्वक शुभ संस्कारबीज उत्पन्न करने वाले कर्मों से भर दें, विचारों में सकारात्मक हों और ऊँचा उठें, भावनाओं में पवित्रता लाएँ और सरलता का संचार होने दें।

यही राजमार्ग है जीवन की सारी खुशहाली का। सुख की इच्छा मात्र पाल बैठने से तो दु:ख-क्लेश ही हाथ आता है, जब तक कि संस्कारबीजों के रहस्य की समझ न हो और जब तक कि जिंदगी के हर क्षण को हमें शुभता से जीना न आ जाए। इसीलिए जीवन के मर्मज्ञ द्रष्टाओं ने हर युग में, हरेक के लिए आत्मज्योति का मार्ग प्रशस्त किया है, ताकि संस्कारबीज बनकर आत्मभूमि पर पड़ने से पहले ही आत्मज्योति के प्रकाश में हम कुसंस्कारों के, कामनाओं के छद्म रूप को पहचान सकें, उनका निराकरण कर सकें। सही अर्थों में हम अपने 'स्व' के 'भाव' अर्थात स्वभाव में स्थित होकर हर पल, हर क्षण खुशियों के बीज बोते चलें और बदले में अलौकिक सुख और आनंद के उत्तराधिकारी बनें।

अयोध्या में श्रीराम का राज्याभिषेक होने के पश्चात एक दिन सभा में लंका की चर्चा होने लगी। हनुमान जी बोले—"अशोक वाटिका में कमल के फूल लाल रंग के थे।" सीता जी कहने लगीं—"फूल सफेद रंग के थे।" भगवान राम विवाद सुलझाते हुए बोले—"पुष्प सफेद रंग के ही थे, पर उस समय माँ सीता की यह स्थिति देखकर हनुमान जी को क्रोध आया, जिससे उन्हें वे पुष्प लाल रंग के दीखे।" वस्तुत: जैसा अंदर होता है, वैसा ही बाहर दिखाई देता है।

प्रेम और ज्ञान का उत्कर्ष है-बोध

संत एवं फकीर, दोनों अनन्य मित्र थे। उनकी मैत्री वर्षों पुरानी थी। संत हिमालय की कंदराओं में रहकर कठोर तपस्या करते थे। बहुतों का मत था कि संत की आयु सैकड़ों वर्षों की होगी, परंतु उनको देखने से ऐसा प्रतीत नहीं होता था। गहन तपस्वी होने के बाद भी वे एक साधारण मनुष्य के रूप में ही अपना जीवन व्यतीत करते थे। वे जब भी अजमेर की ओर आते तो फकीर साहब से अवश्य मिलते, दोनों के बीच अनन्य स्नेह था।

अजमेर शरीफ के महान सूफी संत ख्वाजा मोइनुद्दीन चिस्ती की दरगाह के पास फकीर का निवास था। एक दिन की बात है, फकीर अपने निवास पर नमाज पढ़ रहे थे कि उसी समय संत वहाँ आए और शांत भाव से उनके समीप बैठ गए। दोनों के मध्य भले ही शब्द न बोले गए हों, परंतु ऐसा लगा कि जैसे उनके मध्य वार्तालाप घट गया हो। ऐसी ही नीरवता कुछ देर बनी रही, फिर उठकर दोनों ने मकबरे की परिक्रमा की और बाहर निकल आए।

कुछ दूर पैदल चलकर वे उस्मानी चिल्ला पहुँचे, जहाँ ख्वाजा मोइनुद्दीन चिस्ती ने चालीस दिन तक एकांतवास किया था। फकीर ने संत से कहा—"सूफी भाषा में चालीस दिन के गहन चिंतन-मनन को चिल्ला कहते हैं।" फकीर के मन में विचार उमड़ा कि संत को मोइनुद्दीन चिस्ती के जीवन के विषय में बताया जाए और ऐसा सोचते हुए वे आगे बोले—"ख्वाजा साहब का जन्म सिजिस्तान में सन् ११४२ में हुआ था। बचपन में उनका नाम मोइनुद्दीन हसन था। उनके पिता का नाम गयासुद्दीन हसन था और वे खुरसाना के एक सूफी समुदाय के सदस्य थे।"

थोड़ा रुककर फकीर बोले—"चिस्ती की माँ माहनूर जिलान के प्रसिद्ध सूफी संत शेख मोहियुद्दीन अब्दुल काद्री के परिवार की सदस्या थीं। शेख साहब ने काढ़िया नामक सूफी संप्रदाय की स्थापना की थी। पंद्रह साल की उम्र में उनकी अम्मी-अब्बा का देहांत हो गया। इसके कुछ दिन बाद उनके जीवन में एक अद्भुत घटना घटी। एक सूफी फकीर इब्राहीम कंदूजी ने उनको मिठाई खाने को दी। मिठाई खाने के बाद यह दुनिया उनको बेहद बेजान, निस्सार एवं नीरस प्रतीत हुई और वे उच्चतर दुनिया अर्थात अध्यात्म की खोज में निकल पड़े। उन्होंने घर छोड़ दिया और सूफी प्रभाव के केंद्र बगदाद, समरकंद और बुखारा की यात्रा पर निकल पड़े।"

ऐसा कहते-कहते फकीर और संत उस्मानी चिल्ला के मध्य तक आ गए थे। फकीर ने आगे कहना प्रारंभ किया—"बगदाद में चिस्ती ने मशहूर सूफ़ी संत अब्दुल कादिर से भेंट की। कादिर साहब ने उन्हें अंतर्यात्रा की ओर उन्मुख किया।" कादिर ने कहा—"मेरे बच्चे! मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। तुम इरान के हसन शहर चले जाओ। वहीं तुम्हें तुम्हारे गुरु मिलेंगे।" वे हसन पहुँचे, जहाँ उनकी मुलाकात ख्वाजा उस्मान से हुई। ख्वाजा उस्मान सीरिया के ख्वाजा अबू इरान द्वारा स्थापित सूफियों के चिस्मिया संप्रदाय के गुरु थे। बाद में अपने गुरु के संप्रदाय के नाम के कारण ही वे ख्वाजा मोइनुद्दीन चिस्ती कहलाए।"

फकीर आगे बोले—"अपने गुरु के साथ तीन साल रहने के दौरान उन्होंने कठिन तपस्या की। चौवन वर्ष की उम्र में उनके गुरु ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। उन्होंने अपना नमाज का चोगा और छड़ी उन्हें दी और हज की यात्रा करने को कहा। चिस्ती साहब हज पर गए। काबा की परिक्रमा की और मदीना पहुँचे। मदीना में हजरत मुहम्मद की कब्र है। वहाँ उन्हें स्पष्ट निर्देश मिले कि वे हिंदुस्तान जाकर अजमेर में अपना समय व्यतीत करें और इसी निर्देश के आधार पर वे अजमेर आए और यहीं के होकर रह गए। प्रसिद्ध संत कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी से लेकर संत निजामुद्दीन औलिया तक उनके शिष्य यहीं बने।"

फकीर बोले—"ख्वाजा साहब ने अपने अंतिम दिनों में संत कुतुबुद्दीन को अपना चोंगा, पगड़ी और गुरु प्रदत्त छड़ी प्रदान करते हुए कहा कि मेरा अब इस दुनिया से निकलने का वक्त आ गया है। तुम दिल्ली

जाकर बस जाओ और इनसानियत के उसूलों को जन-जन तक पहुँचाने का काम करो। मेरी इस विरासत को अब तुम्हीं सँभालो। इसके बीस दिन बाद सन् १२३५ की उस रात नमाज पढ़ने के बाद वे अपने कमरे में सोने चले गए। कहा जाता है कि सारी रात उनके कमरे से सारंगी का मधुर स्वर आता रहा और उसी रात वे इस दुनिया को छोड़ कर चल दिए। कहा जाता है कि अंतिम समय में उनके चेहरे पर परमानंद की मुस्कराहट फैली हुई थी।''

इतना कहने के उपरांत फकीर ने संत से पूछा—''क्या वह मुस्कराहट उन्हें बोध होने की मुस्कराहट थी?'' संत ने कहा—''जब बोध अपने चरम पर होता है तो मनुष्य का व्यक्तित्व अपने सारे आयामों में आनंद का अनुभव करता है और ऐसे में चेहरे पर मुस्कराहट और अंतर्मन में प्रसन्नता सहज ही आ जाती है।'' फकीर को जिज्ञासा हुई—''बोध के विषय में तो मैंने सुना है, पर बोध के चरम की अवस्था कैसी होती है?'' संत ने कहा—''बोध परम अनुभव है, जीवन का। जब अनुभव अपने शिखर पर होता है तो उस अवस्था को परम बोध कहते हैं। इसमें ज्ञान एवं प्रेम की पराकष्ठा है। ध्यान रहे जितना प्रेम होगा उतना ही ज्ञान होगा। जहाँ चरम ज्ञान व परम प्रेम मिल जाते हैं, वहाँ बोध प्रकट होता है। विरले ही इस बोध को प्राप्त करते हैं।''

फकीर ने कहा—''आज जीवन में प्राय: सभी इससे अनभिज्ञ एवं वंचित क्यों रहते हैं? क्यों उनको इस सत्य का बोध नहीं होता है? ज्ञानी जन भी प्रेम एवं ज्ञान को दो भिन्न-भिन्न धाराएँ मानते हैं। आखिर इसका कारण क्या है?'' संत ने कहा—''इसका कारण है अनेक भ्रांतियाँ, जो कुछ इस ढंग से उलझी हैं कि इनमें उलझकर समूचा जीवन स्वयं ही उलझन बन गया है। इन्हीं भ्रांतियों से भ्रमित होकर प्राय: लोगों ने मान लिया है कि विचारों का संग्रह ज्ञान है। जो जितना विचारों का संग्रह करेगा, वह उतना ही ज्ञानी होगा।''

संत ने कहा—''बाहरी दुनिया में प्रोफेसर, वक्ता एवं विद्वान को ज्ञानी मान लिया जाता है; क्योंकि उनके पास अपने विषय को समझाने, बताने एवं उल्लेख करने के लिए पर्याप्त तथ्य एवं तर्क होते हैं। तथ्यों एवं तर्कों से विषय को समझाया तो जा सकता है, परंतु अनुभव नहीं किया जा सकता है। एक ज्ञानी एवं प्रोफेसर में इसी का तो अंतर है। प्रोफेसर के पास विचारों का अद्‌भुत संग्रह है, परंतु ज्ञानी को इसका अनुभव है। ज्ञान एक विशिष्ट एवं विशेष अनुभव का नाम है, जो भ्रांतियों के मिटने के साथ विकसित होता जाता है।''

फकीर ऐसी अद्‌भुत व्याख्या का श्रवण ही नहीं कर रहे थे, अपितु उसे हृदयंगम भी कर रहे थे। उन्होंने पूछा—''क्या यही सत्य प्रेम के बारे में भी है?'' संत ने कहा—''हाँ! अवश्य ही यह सत्य प्रेम के बारे में भी है। भ्रांतियों ने प्रेम को ईर्ष्या, आसक्ति व अधिकार का पर्याय बना दिया है, परंतु ऐसा है नहीं। प्रेम तो पारस्परिक एकात्मता की रसधार है, जो प्रेम की अनुभूति पाने वालों को सभी बंधनों से मुक्त कर व्यापक बनाती है। इसके विपरीत भ्रांति, ज्ञान एवं प्रेम के बीच परदा डाल देती है, दोनों के बीच विभेद करती है, उन्हें विभाजित एवं विभक्त करती है। इस भ्रांति के अनुसार—ज्ञानी कठोर एवं प्रेमी कोमल होते हैं; जबकि यथार्थ में दोनों भ्रांतिमुक्त, परिष्कृत व करुणापूर्ण होते हैं। **जो ज्ञानी है, वही सच्चा प्रेमी है और निष्कपट प्रेमी ही सम्यक ज्ञानी होता है।**''

फकीर ने कहा—''क्या यह मानें कि जहाँ ज्ञान एवं प्रेम दोनों हैं, वहीं बोध है।'' संत ने कहा—''यह केवल मानने की बात नहीं, बल्कि यथार्थ सत्य है। बोध, ज्ञान एवं प्रेम का चरमोत्कर्ष एवं उनका तादात्म्य है और जहाँ बोध होता है, वहीं मानव चेतना का शिखर होता है। जहाँ ज्ञान व प्रेम अपने शिखर पर होते हैं, वहीं बोध होता है। जहाँ बोध होता है, वहाँ बुद्ध, ईसा, कृष्ण, मुहम्मद, चिस्ती, चाहे जो भी नाम दो, उपस्थित होते हैं। उनका स्वरूप कोई भी क्यों न हो, वे बोध के प्रतिमूर्ति होते हैं।''

फकीर को महसूस हुआ कि वे संत का आज कुछ ज्यादा ही समय ले गए हैं और उसी को ध्यान में रखते हुए उनने अपनी अंतिम जिज्ञासा रखी—''क्या यह बोध प्राप्त कर पाना हमारे लिए भी संभव है?'' संत मंद मुस्कराहट के साथ बोले—''संभव ही नहीं, यही जीवन का एकमात्र उद्‌देश्य है। **अध्यात्म वार्तालाप का नहीं, अनुभूति का विषय है।** तथ्यों को गढ़ने का काम तो कोई मशीन भी कर सकती है, परंतु जीवन के परिष्कार का कार्य अध्यात्म से ही संभव है और बोध ही आध्यात्मिक जीवन की परिणति है। जब तुम इस पथ के पथिक हो ही, तो बोध ही तुम्हारे जीवन का एकाकी लक्ष्य है। इसी पर बढ़े चलो।'' ख्वाजा साहब के जीवन से मिले सूत्रों को जिस तरह संत ने समझाया, उससे फकीर के जीवन को बोध की दिशा मिल चुकी थी। ✿

►समूह साधना वर्ष◄

वृद्धावस्था को दयनीय न बनने दें



वृद्धावस्था जीवन की वह अवस्था है, जिसमें शरीर कमजोर व अशक्त हो जाता है तथा दूसरों की सहायता व मदद चाहता है। इस अवस्था में व्यक्ति परिजनों का अपनापन व उनका प्यार चाहता है, लेकिन दुर्भाग्य से उसे मिलती है परिजनों से उपेक्षा, जिसके बारे में वह सोच भी नहीं सकता; क्योंकि जिन हाथों से उसने अपने बच्चों को चलना सिखाया, उनकी हर सुख-सुविधा का ध्यान रखा, जीवन के इस पड़ाव में उसके वही बच्चे उसका ध्यान रखना तो दूर उससे ठीक से बात करना भी पसंद नहीं करते।

साठ वर्ष का होने पर अधिकतर व्यक्ति सेवानिवृत्त होना चाहते हैं और बच्चों को अपनी जिम्मेदारी सौंपकर उन्हें आगे बढ़ाना चाहते हैं, लेकिन यदि हाल में हुई एक सर्वे रिपोर्ट पर ध्यान दें तो पता चलता है कि देश में ७१ प्रतिशत बुजुर्ग इस उम्र में भी अपना पेट भरने के लिए अथवा अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नौकरी अथवा अन्य कार्य करने के लिए विवश हैं। यही नहीं, आज की इस युवा पीढ़ी में बुजुर्गों के प्रति असंवेदनशीलता इस कदर बढ़ी है कि इस उम्र में उनकी मदद करना तो दूर, वे उन्हें और श्रम करने एवं पैसा कमाकर देने के लिए मजबूर करने में शर्मिंदगी भी महसूस नहीं करते।

आज का कड़ुआ सच तो यही है कि जिन्होंने हमें चलना सिखाया, हम उनके साथ नहीं चल पा रहे हैं। अधिकांश बुजुर्ग व्यक्ति या तो घर के किसी कोने में अकेलापन भोग रहे हैं या बहू-बेटों की झिड़कियाँ सुनते हुए अपने जिंदा होने को कोस रहे हैं, कहीं उन्हें घर के बाहर का रास्ता दिखा दिया गया है, तो कहीं वे विदेश गए बच्चों का इंतजार करते हुए नौकरों के सहारे जिंदगी काट रहे हैं।

पिछले दिनों रिसर्च एंड एडवोकेसी सेन्टर ऑफ एज़वेल फाउंडेशन के एक सर्वेक्षण में यह खुलासा हुआ है कि हमारी युवा पीढ़ी न केवल वरिष्ठजनों के प्रति लापरवाह है, बल्कि उनकी समस्याओं के प्रति संवेदनहीन भी है। यह पीढ़ी पड़ोस के बुजुर्गों के साथ भले ही औपचारिकता में थोड़ा सम्मान बरत ले, परंतु अपने घर के बुजुर्गों की उपेक्षा करती है, उन्हें नजरअंदाज करती है। सर्वेक्षण के अनुसार—५९.३ प्रतिशत लोगों का यह मानना है कि समाज व घर में बुजुर्गों के साथ व्यवहार में विरोधाभास है। केवल १४ प्रतिशत लोगों का यह मानना है कि घर-बाहर, दोनों जगह बुजुर्गों की हालत में कोई अंतर नहीं है; जबकि २५ प्रतिशत यह मानते हैं कि घर में बुजुर्गों का सम्मान खतम हो गया है; जबकि बहुत कम लोगों की राय यह है कि घर में बुजुर्गों को सम्मान दिया जाता है।

इसी क्रम में कभी-कभी ऐसी घटनाएँ देखने-सुनने को मिलती हैं कि ऐसा लगता है मानो मनुष्य अपनी मानवता ही गँवा बैठा है। ऐसी ही एक घटना बेंगलुरू में रहने वाले एक युवक की थी, जो अपने पिता को रोज जानवर बाँधने वाली जंजीर से घर की बालकनी में बाँधकर ऑफिस निकल जाता था। एक प्लेट में उसके खाने के लिए थोड़ा-सा कुछ रखा होता था। भूख-प्यास और गरमी से बेचैन पिता चिल्लाता-कराहता रहता, लेकिन घर में बहू या किसी और को इससे कोई मतलब नहीं होता था। आखिर एक दिन जब पड़ोसियों से यह सब नहीं देखा गया तो उन्होंने पुलिस बुला ली। सब पिता की हालत देख दंग थे। महीनों से ऐसी यातनाएँ झेल रहे पिता का शरीर कंकाल हो चला था और मानसिक स्थिति पागलों जैसी हो गई थी। पुलिस ने कुत्ते की जंजीर से बुजुर्ग को मुक्त कराया और अमानवीय व्यवहार करने वाले बेटे और उसकी पत्नी को गिरफ्तार कर लिया।

जहाँ एक ओर ऐसी अमानवीय घटनाएँ देखने को मिलती हैं, जो हमें स्तब्ध कर देती हैं, वहीं कुछ परिवार ऐसे भी हैं, जो अपनी आत्मीयता व बुजुर्गों के प्रति सम्मान के भाव से सुनने वाले का हृदय जीत लेते हैं। ऐसी ही एक हालिया घटना एक महानगर की है, जहाँ घर के बुजुर्ग की सेवा-सहायता करने वाला परिवार रहा करता है। उनके पिता अस्पताल से एक लंबी व गंभीर

बीमारी झेलकर घर लौटे थे। लंबे समय तक उन्हें कोमा में भी रहना पड़ा था। स्वाभाविक था कि उनके लिए आसानी से घर के सभी सदस्यों को पहचान पाना संभव नहीं था। शरीर की दैनंदिन आवश्यकताओं की पूर्ति भी उनसे संभव नहीं थी और उनको नहलाने-धुलाने से लेकर उनके वस्त्र बदलने तक के सारे कार्य परिवार के सदस्यों को ही करने पड़ते थे। ऐसी स्थिति में सारी चुनौतियों का सामना करते हुए भी परिवार के सभी सदस्यों ने न केवल उनकी देख-भाल की जिम्मेदारी पूरी सजगता व सहृदयता से निभाई, वरन शायद यह उनके प्यार भरे प्रयासों का ही परिणाम था कि उनके पिता न केवल कोमा से लौटे, अपितु काफी हद तक स्वस्थ भी हो गए।

हमारे देश में माता-पिता अपने बेटे-बेटियों की शिकायत करने की मानसिकता बिलकुल नहीं रखते और इसीलिए उनके अमानवीय बरताव को सहते चले जाते हैं। संभवतया कुछ लोग उनकी इसी भलमनसाहत का अनुचित लाभ उठाते हैं एवं उनके साथ दुर्व्यवहार करने से भी नहीं चूकते। वृद्धावस्था में मिलने वाले इन्हीं कष्टों के कारण शायद लोग इस अवस्था को जीवन का अभिशाप मानते हैं। इस अवस्था तक आते-आते शरीर के अंग-प्रत्यंग शिथिल पड़ जाते हैं और इनसान की जिंदगी दूसरे की दया-कृपा पर निर्भर हो जाती है। इस अवस्था में व्यक्ति मानसिक तनावों से ग्रस्त रहता है, उसके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है और उसकी याददाश्त कमजोर हो जाती है।

माता-पिता के वृद्ध हो जाने पर यदि आज के बिगड़े हुए उनके बच्चों की स्थिति का जायजा लें तो यह बात पता चलती है कि उनकी इस अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते संतान अक्सर उनसे छुटकारा पा लेना चाहती है; क्योंकि वह इन्हें बोझ और अपनी ऐशोआराम भरी जिंदगी की सबसे बड़ी बाधा मानती है। ऐसे संवेदनहीन बच्चों को यह एहसास भी नहीं होता कि वे उन्हीं माता-पिता के कारण इस सुख-सुविधा से भरी जिंदगी को जी पा रहे हैं। उनके यही माता-पिता उनके बचपन की जरूरतों से लेकर उनके कैरियर निर्माण और शादी-विवाह की जिम्मेदारी उठाने तक का अपना दायित्व निभाते रहे हैं। यह करते समय संभवतया उनने सोचा हो कि बुढ़ापे में उनका एकमात्र सहारा उनके बच्चे ही हैं, जो उनकी देख-भाल करेंगे, लेकिन समय बदलने के साथ लोग भी बदल जाएँगे, इसका उन्हें भान भी न होगा।

बुजुर्गों और बहू-बेटों में सामन्जस्य न हो पाने की एक वजह पश्चिमी सभ्यता का बढ़ता प्रभाव व रूढ़िवादिता भी है। पश्चिम का अंधानुकरण बड़े-बूढ़ों को नहीं भाता और बहू-बेटों को बुजुर्गों का उनकी जिंदगी में यह दखल अच्छा नहीं लगता। बुजुर्ग लोगों को अपनी परंपराएँ, निर्णय, विचार सही लगते हैं, वे आज की परिस्थिति में होने वाले परिवर्तनों को न तो बहुत अच्छा मानते हैं और न ही उन्हें आसानी से स्वीकार कर पाते हैं, लेकिन उनकी संतानें जीवन के नए आयामों व परिवर्तनों को फैशन मानती हैं और उनकी अवज्ञा करने को अपना अधिकार। दोनों पीढ़ियों के बीच पनपती दूरियाँ कब खाइयों में बदल जाती हैं, इसका पता ही नहीं चलता।

बहुत से लोग पीढ़ियों के बीच बढ़ती इस दूरी को ही इन अमानवीय घटनाओं का कारण मानते हैं; जबकि सचाई यह नहीं है। सत्य तो यह है कि सुविधाएँ बढ़ने के साथ-साथ मनुष्य उतना ही स्वार्थी हुआ है और उसके स्वार्थ की पूर्ति में उसे जो भी बाधक लगता है, वह उसके साथ अनुचित आचरण करने से नहीं चूकता, चाहे वह उसके माता-पिता ही क्यों न हों। इसीलिए आज की सबसे बड़ी आवश्यकता मनुष्य को स्वार्थ की संकीर्णताओं से परे जाकर मानवता सिखाने की है।

वृद्धावस्था जीवन का आखिरी पड़ाव है, इस बात का एहसास आज के युवाओं को होना चाहिए; क्योंकि किसी दिन इस स्थिति का उन्हें भी सामना करना है। जो परिस्थिति आज वे अपने माता-पिता को दे रहे हैं, कल उनके बच्चे भी उनके साथ वैसा ही बरताव कर सकते हैं और अगर न भी करें तो भी उनके द्वारा माता-पिता के प्रति किए गए बुरे व्यवहार को उनके कर्म कभी क्षमा नहीं करेंगे और समय आने पर उन्हें दंडित करेंगे। माता-पिता तो भगवान की तरह होते हैं, जिनकी सेवा करो तो ढेरों आशीर्वाद मिलते हैं और जीवन सफल बनता है।

व्यक्ति वही पाता है, जो वह बोता है और इसलिए माता-पिता की सेवा करना, उनका ध्यान रखना, उनके अनुभवों से सीखना, उन्हें सम्मान देना, उनसे अच्छा बरताव करना—यही तो वे मुख्य बातें हैं, जिनके द्वारा बच्चे स्वयं को धन्य कर सकते हैं; क्योंकि माता-पिता का जो भी ऋण बच्चों पर होता है, उसे कुछ भी करने पर चुकाना आसान नहीं होता। अपनेपन का ऋण अपनापन देकर ही चुकाया जा सकता है।

पर्व विशेष

निर्विघ्नं कुरु मे देव



विघ्नविनाशक गणपति प्रथमपूज्य देव हैं। कोई भी शुभकार्य करने से पहले प्रथमपूज्य गणपति की पूजा की जाती है और यह माना जाता है कि सर्वप्रथम पूजन होने से विघ्नेश्वर गणेश भगवान मार्ग की सभी बाधाओं को दूर करते हैं। गणेश पुराण के अनुसार—जब भगवान शिव ने त्रिपुरासुर से संग्राम के लिए प्रस्थान किया तो इससे पूर्व दैवी व्यवस्था का उल्लंघन करते हुए गणेश जी को पुत्र जानकर उनके नियम (प्रथम पूजन) की उपेक्षा की, तब उन्हें विघ्नों से पीड़ित होना पड़ा। हालाँकि भगवान गणेश यदि अपने माता-पिता के साथ पक्षपात करना चाहते तो कर सकते थे, पर शिव-शक्ति ने 'गणपति' पद की अनदेखी की थी, इसलिए गणपति को अपने माता-पिता के विरुद्ध नियम भंग किए जाने पर कार्रवाई करने को विवश होना पड़ा। गणपति ने पुत्र के रूप में अपयश अपने सिर पर ले लिया, पर वे अपने कर्त्तव्य का पालन करने से कभी नहीं चूके।

'गणेश' शब्द का अर्थ इस तरह बताया गया है—**गणानां जीवजतानां यः ईशः, स्वामी स गणेशः।** अर्थात जो समस्त जीव-जाति (प्राणिमात्र) के ईश यानी स्वामी हों। ब्रह्मवैवर्त पुराण में भगवान विष्णु, 'गणेश' शब्द की दार्शनिक व्याख्या करते हुए कहते हैं—**ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः। तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्।** अर्थात 'ग' ज्ञानार्थवाचक और 'ण' निर्वाणवाचक है। इन दोनों (ग+ण) के जो ईश हैं, उन परमब्रह्म 'गणेश' को मैं प्रणाम करता हूँ।

संस्कृत में 'गण' शब्द समूहवाचक माना गया है—**गणशब्दः समूहस्य वाचकः परिकीर्तितः।** अतः 'गणपति' शब्द का अर्थ हुआ—'समूहों का पालन करने वाला परमात्मा।' एक अन्य अन्वय के अनुसार—**गणानां पतिः गणपतिः।** अर्थात 'देवताओं के अधिपति को गणपति कहते हैं।' इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है—'**निर्गुण-सगुण ब्रह्मगणानां पति गणपतिः।** अर्थात जो निर्गुण और सगुण, दोनों रूप में व्यक्त ब्रह्म का अधिपति है, वह परमेश्वर 'गणपति' है।'

ऐसी मान्यता है कि सारे संसार के नियंता परमब्रह्म परमात्मा ही गणपति हैं। यह गणपति निर्गुण-निराकार स्वरूप में प्रणव (ॐ) तथा सगुण-साकार रूप में गजमुख (गजानन) हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी श्रीरामचरितमानस में लिखते हैं—

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥

अर्थात विवाह के समय ऋषि-मुनियों की आज्ञा से शिव जी और पार्वती जी ने गणेश जी का पूजन किया। लेकिन गणेश जी शिव-पार्वती के पुत्र हैं, तो उनका माता-पिता के परिणय से पूर्व पूजन में आवाहन कैसे संभव है? यह शंका व प्रश्न उठना स्वाभाविक है और इसका उत्तर यही है कि श्रीगणेश अनादि पुरुष हैं।

शिवपुराण के अनुसार—पार्वती-पुत्र गणेश जी की उत्पत्ति उनकी देह में लगे उबटन से हुई थी। जबकि ब्रह्मवैवर्त पुराण के कथनानुसार—माता पार्वती को गणेश जी पुत्र के रूप में पुण्यक व्रत के फलस्वरूप प्राप्त हुए थे। कारण चाहे जो भी रहा हो, फिर भी हमारे पौराणिक ग्रंथ गणपति को प्रणवस्वरूप बताते हैं। अर्थात शिव-पार्वती का पुत्र बनने से पूर्व श्रीगणेश निराकार प्रणव (ॐ) के रूप में थे। भगवान शिव के पुत्र के रूप में उनका गजमुख रूप साकार हुआ। ऋषि-मुनि भी प्रणव (ॐ) और गणेश में अभेद दृष्टि रखते हैं। उमा-शंकर के पुत्र को गजमुख इसीलिए लगा, ताकि प्रणव (ॐ) का रूप साकार हो सके।

पौराणिक मान्यताओं के अनुसार—गणेश जी ऋद्धि-सिद्धि के पति हैं और शुभ-लाभ इनके पुत्र हैं। श्रीगणेश को 'विघ्नेश्वर' कहा जाता है। इसलिए प्रत्येक कार्य के प्रारंभ में इनका पूजन कार्य के निर्विघ्न संपन्न होने के उद्देश्य से किया जाता है। श्रीगणेश जी की पूजा से समस्त देवगणों का पूजन स्वतः हो जाता है; क्योंकि ये 'गणपति' कहलाते हैं। गणपति देवगणों के नायक होने से गणनायक एवं गणाध्यक्ष कहलाते हैं। देवगणों के ईश (स्वामी) होने के कारण ये 'गणेश' कहलाते हैं। धर्मग्रंथों

में अनंतकोटि ब्रह्मांडनायक, परात्पर, पूर्णतम, परब्रह्म, परमात्मा ही 'गणपति' एवं गणेश नामों से पुकारे गए हैं। सृष्टि की रचना के समय ये ब्रह्मा जी की विघ्न-बाधाएँ दूर करके उनकी सहायता करते हैं। सृष्टि के पालन में जब-जब आसुरी शक्तियाँ संकट उत्पन्न करती हैं, तब-तब श्रीगणेश उसके निवारण के लिए उपस्थित होते हैं।

जिस प्रकार दुष्टों का दमन करने के लिए विष्णु जी ने हर युग में अवतार लिया है, उसी तरह गणेश जी भी लोकहितार्थ प्रत्येक युग में अवतरित हुए। मान्यता के अनुसार—सतयुग में गणेश भगवान ने 'विनायक' नाम से अवतार लिया। तब उनकी दस भुजाएँ थीं और उनका वाहन सिंह था। सिंहध्वज विनायक ने काशी जाकर नरांतक और देवांतक दानवों का वध करके संसार का कल्याण किया। त्रेतायुग में षड्भुजी गणेश मयूर को अपना वाहन बनाने के कारण 'मयूरेश' कहलाए। उन्होंने कमलासुर तथा महादैत्यपति सिंधु को उसके असुरों सहित मार डाला। द्वापरयुग में 'गजानन' गणेश चतुर्भुज थे तथा मूषक उनका वाहन बना। मूषकध्वज गजानन ने सिंदूरासुर का संहार किया और राजा वरेण्य को 'गणेश-गीता' का उपदेश दिया।

आदि शंकराचार्य ने गणेश जी के प्रतीकात्मक तत्त्वों का बहुत सुंदर वर्णन किया है। गणेश भगवान को हाथी के सिर वाले रूप में पूजा जाता है, उनका यह स्वरूप हमें निराकार परब्रह्म रूप की ओर ले जाने के लिए है। वे अगम, निर्विकल्प, निराकार और एक ही हैं। अर्थात वे अजन्मे हैं, गुणातीत हैं और उस परम चेतना के प्रतीक हैं, जो सर्वव्यापी है। गणेश जी वही शक्ति हैं, जिससे इस ब्रह्मांड का सृजन हुआ, जिससे सब कुछ प्रकट हुआ और जिसमें यह सब कुछ विलीन हो जाना है।

गणेश जी का बड़ा पेट उदारता और पूर्ण स्वीकृति का प्रतीक है। उनका अभय मुद्रा में उठा हाथ संरक्षण का प्रतीक है कि 'घबराओ नहीं, मैं तुम्हारे साथ हूँ' और उनका दूसरा हाथ नीचे की तरफ है और हथेली बाहर की ओर, जो कहती है कि वह निरंतर हमें दे रहे हैं। गणेश जी का एक ही दाँत है, जो कि एकाग्रचित होने का प्रतीक है। वे अपने हाथों में अंकुश लिए हुए हैं, जो कि सजगता का प्रतीक है और पाश नियंत्रण का प्रतीक है। गणेश जी की सवारी मूषक यानी चूहा है। यहाँ मूषक भी एक प्रतीक है। हम जो बंधन बाँधकर रखते हैं, मूषक उसे कुतर-कुतरकर समाप्त कर देता है। मूषक उस मंत्र की भाँति है, जो धीरे-धीरे अज्ञान की एक-एक परत को काटकर भेद देता है और उस परम ज्ञान की ओर ले जाता है, जिसका प्रतिनिधित्व गणेश जी करते हैं।

इस तरह इस माह मनाई जाने वाली गणेश चतुर्थी हमें यह प्रेरणा देती है कि हम भगवान गणेश के प्रतीक चिह्नों से प्रेरणा लें और उनकी उपासना के माध्यम से अपने जीवन को शुभमार्ग की ओर ले चलें।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस से एक बार उनके शिष्यों ने जिज्ञासा व्यक्त की कि जब अवतारी सत्ताएँ आती हैं तो उनके शिष्यों में एकरूपता क्यों नहीं होती। किसी का आध्यात्मिक विकास ज्यादा होता है, किसी का कम, यदि अवतार चाहें तो क्या सबकी समान आत्मिक प्रगति नहीं करा सकते? रामकृष्ण परमहंस ने उत्तर दिया—"संसार में कर्मफल विधान का नियम है। हर व्यक्ति अपने द्वारा किए कर्मों के अनुसार प्रगति करता है, माध्यम चाहे कोई भी बने और अवतारों का कार्य बीज डाल जाना है, फिर वह चाहे जब भी फलित हो। छत पर बीज डला रह जाए तो घर ढह जाने पर भी उस बीज से पेड़ पैदा हो जाता है। कौन से बीज का पेड़ बनेगा यह उस बीज की संकल्पशक्ति पर निर्भर है। ठीक वैसे ही अवतार सब पर अनुग्रह करते हैं, पर उसका फल वही पाते हैं, जो उस हेतु स्वयं भी संघर्ष करते हैं।"

क्रोध पर करें नियंत्रण



क्रोध से सभी परिचित हैं। किसी-किसी को क्रोध इतना तेज आता है कि बाद में वह स्वयं पर शर्मिंदा होता है। हर कोई अपने क्रोध पर नियंत्रण करना चाहता है, लेकिन क्रोध आने पर नियंत्रण करना तो दूर की बात, वह कुछ भी सोचने की स्थिति में नहीं रहता। इसलिए तो कहते हैं कि क्रोध का अंत पछतावे पर होता है। क्रोध आने पर व्यक्ति के बनते हुए कार्य क्षण भर में बिगड़ जाते हैं। क्रोध की भीषण स्थिति में किसी का कुछ भला नहीं होता, केवल व्यक्ति के अहंकार की पुष्टि होती है, वह दूसरों पर अपना रौब झाड़ता है, अपने बल का प्रदर्शन करता है और यदि व्यक्ति क्रोध की स्थिति में कुछ कर नहीं पाता, तो स्वयं ही अपना नुकसान करता है, कुंठाग्रस्त हो जाता है।

क्रोध हर व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक सेहत के लिए बहुत नुकसानदायक है। कभी-कभी यह रिश्तों के भी टूटने का कारण बनता है। जब हम क्रोध को समझ नहीं पाते, तो अक्सर निकटवर्ती लोगों को सर्वाधिक दुःख पहुँचाते हैं। क्रोध के दौरान मुख्य रूप से तीन बातें साथ होती हैं। पहली बात यह है कि क्रोध एक भावना है। दूसरी बात, क्रोध एक व्यवहार या व्यवहारों की शृंखला है और तीसरी बात, क्रोध विचारों की शृंखला भी है।

क्रोध के मनोविज्ञान को समझाने के लिए एक बहुत रुचिकर प्रसंग सूफी फकीर जुन्नैद के जीवन से संबंधित है। जुन्नैद बहुत ही शांत स्वभाव के थे। अक्सर लोग उनके पास अपनी समस्याओं के समाधान के लिए आया करते थे। उनके पास आने वालों में कुछ तो बेहद गुस्से में आते और कहते—"जिस शख्स के कारण मैं गुस्से में हूँ, उसे सबक सिखाने का कोई नुस्खा जल्दी से बता दीजिए, ताकि आगे से वह मेरे साथ वैसी हरकत न करे।" जुन्नैद उसे पहले शांत करने की कोशिश करते, लेकिन जब उसका गुस्सा कम नहीं होता, तो जुन्नैद मुस्कराते और कहते—"मैं तुम्हें क्रोध करने को मना नहीं करता हूँ, बल्कि ये कहता हूँ कि तुम आराम से गुस्सा करना, पर चौबीस घंटे बाद करना।" अगले दिन जब लोग उनके पास आते तो वास्तव में उनका गुस्सा शांत हो गया होता था।

एक दिन जुन्नैद से उनके एक शिष्य ने पूछा— "आखिर क्रोध करने वाले इन लोगों को आप चौबीस घंटे का ही समय क्यों देते हैं? उसे उसी समय अपनी बात कहने का मौका क्यों नहीं देते?" जुन्नैद बोले— "बेटा! क्रोध के आवेश में अगर तुरंत जवाब दिया जाए तो आदमी बेकाबू हो जाता है। वह दोस्ती, रिश्ते-नाते भी भुला देता है। उस समय उसे कुछ भी समझा पाना संभव नहीं होता।" इस पर शिष्य बोला—"फिर चौबीस घंटे का ही वक्त क्यों? दो-तीन दिन का समय क्यों नहीं?" इसका जवाब देते हुए जुन्नैद बोले—"चौबीस घंटे तक कोई लगातार गुस्से में नहीं रह सकता, इस दौरान उसे अपने आप अपनी गलती का एहसास होने लगता है। वहीं दो-तीन दिनों बाद वह और कामों में व्यस्त हो जाता है, और अपनी गलती भूल जाता है। इसलिए चौबीस घंटे के अंदर कोई भी व्यक्ति अगर अपने गुस्से पर सोच ले, तो वह उसे न सिर्फ काबू कर सकता है, बल्कि दूसरों को भी उनकी गलती का एहसास करा सकता है।"

क्रोध आने पर हमें स्वयं को समय देना चाहिए। क्रोध के कारण यदि किसी का नुकसान करने का मन हो तो उस पर एक दिन बाद पुनः विचार करना चाहिए। इस बीच अपने गुस्से के सभी कारणों व प्रभावों पर पूरी तरह से विचार कर लेना चाहिए और अपनी मनःस्थिति को भी टटोलना चाहिए। जिस तरह व्यक्ति अपने कार्यों को बाद में करने के लिए टाल देता है, उसी प्रकार व्यक्ति को अपने गुस्से को भी टालना सीखना चाहिए और इस दौरान क्रोध के कारण मन में उठने वाले विचारों पर गहन मंथन करना चाहिए।

क्रोध में नकारात्मक विचारों की शृंखला तेजी से उफान लेती है और व्यक्ति को कुछ सोचने-समझने लायक नहीं रहने देती। ऐसी स्थिति में एकांत का सहारा लेना चाहिए। मौन हो जाना चाहिए, ताकि क्रोध की उत्तेजित अवस्था में किसी और का अहित न हो जाए।

▶समूह साधना वर्ष◀

भगवान बुद्ध भी अपने शिष्यों को क्रोध न करके अधिक से अधिक शांत रहने का पाठ पढ़ाते थे। एक बार गौतम बुद्ध अपने शिष्यों के साथ एकदम शांत बैठे हुए थे। उन्हें इस तरह बैठे हुए देखकर उनके शिष्य चिंतित हो गए कि कहीं वे अस्वस्थ तो नहीं। एक शिष्य ने उनसे पूछ ही लिया—"आज आप इस तरह मौन क्यों हैं?" इसी बीच एक अन्य शिष्य ने उनसे पूछा—"क्या आप अस्वस्थ हैं।" पर बुद्ध ने कुछ भी जवाब नहीं दिया, मौन रहे। इससे शिष्यों में चिंता बढ़ गई। सभी अपने-अपने हिसाब से सोचने लगे कि बुद्ध के मौन होने की वजह क्या हो सकती है। थोड़ी देर बाद कुछ दूर पर खड़ा एक व्यक्ति जोर से चिल्लाया—"आज मुझे सभा में बैठने की अनुमति क्यों नहीं दी गई?" सभी चौंककर उसकी ओर देखने लगे।

इस सबसे अप्रभावित भगवान बुद्ध ध्यानमग्न बैठे रहे। वह व्यक्ति फिर उसी तरह चिल्लाया—"आज मुझे प्रवेश की अनुमति क्यों नहीं मिली?" इस बीच एक उदार शिष्य ने उसका पक्ष लेते हुए कहा कि उसे सभा में आने की अनुमति प्रदान की जाए। बुद्ध ने आँखें खोलीं और बोले—"नहीं, वह अस्पृश्य है, उसे आज्ञा नहीं दी जा सकती।" यह सुनकर सभी शिष्यों को आश्चर्य हुआ। बुद्ध उनके मन का भाव समझ गए और बोले—"हाँ, वह अस्पृश्य है।" इस पर कई शिष्य एक साथ कह उठे—"पर हमारे धर्म में तो जात-पाँत का कोई भेद नहीं, फिर वह अस्पृश्य कैसे हो गया?" तब बुद्ध ने स्पष्ट किया—"आज वह क्रोधित होकर आया है। क्रोध से जीवन की एकता भंग होती है। क्रोधी व्यक्ति मानसिक हिंसा करता है, इसलिए वह अस्पृश्य होता है। उसे कुछ समय एकांत में ही खड़ा रहना चाहिए। पश्चात्ताप की अग्नि में तपकर वह समझ लेगा कि अहिंसा ही महान कर्त्तव्य और परम धर्म है।" यह सुनकर वह व्यक्ति भगवान बुद्ध के चरणों में गिर गया और कभी क्रोध न करने की शपथ ली। इस तरह उनके शिष्यों ने क्रोध के विषय में एक नया पाठ सीखा।

हमें भी क्रोध आने पर मौन एवं एकांत का सहारा लेना चाहिए, अन्यथा इस अवस्था में किसी का भी, कुछ भी अहित हो सकता है। क्रोध मन की अवस्था का एक उफान है, जिससे हमारी ऊर्जा का बहुत नुकसान होता है जैसे दूध उबलने पर उसकी मलाई बरतन से बाहर गिर जाती है, ठीक इसी तरह क्रोध की अवस्था में हम अपनी ऊर्जा को अन्य परिस्थितियों की तुलना में अधिक गँवाते हैं। इसलिए यथासंभव अपने क्रोध पर नियंत्रण करके शांत रहना सीखना चाहिए, अन्यथा समय बीत जाने पर पछताने के अतिरिक्त और कुछ साथ नहीं रहता।

एक राजा अत्यंत चिंतित एवं उदास रहा करता था। चिकित्सकों ने उसे प्रसन्न करने के बहुत प्रयत्न किए, किंतु कोई परिणाम न निकला। तब किसी ने सुझाव दिया—"यदि राजा को किसी सुखी व प्रसन्न व्यक्ति का कुरता पहना दिया जाए तो राजा सुखी हो जाएगा।" राजकर्मचारी तुरंत ही ऐसे व्यक्ति की खोज करने में लग गए।

संयोगवश एक प्रसन्न व्यक्ति उन्हें मिल भी गया। कर्मचारी उसे राजा के पास लेकर पहुँचे। उसे देखते ही राजा खुशी से चीखा और बोला—"लाओ! जल्दी से अपना कुरता मुझे लाकर दे दो तो मैं उसे पहन लूँ।" वह व्यक्ति बोला—"राजन्! मैं तो साधारण-सा किसान हूँ। कुरता तो क्या मैंने जीवन में एक अँगोछा भी नहीं देखा है, पर जो मुझे मिला है, उससे मैं संतुष्ट हूँ और उसी में प्रसन्न हूँ।" राजा की समझ में आ गया कि संतोष ही सुख का कारण है।

निर्बल का बल है भगवान



नादान एवं दुर्बल टिटिहरी अपनी छोटी व पतली चोंच से किनारे की रेत को समुद्र में डाल रही थी। वह अपनी चोंच से सामर्थ्य भर रेत भरती और उड़कर समुद्र में डाल आती। सुबह से शाम हो गई, पर वह न तो थकी और न ही सशंकित रही कि उसे अपनी चोंच से समुद्र को पाट डालने में कितना समय लगेगा। वह संकल्पित थी कि वह समुद्र के दर्प, अहंकार एवं अभिमान को चुनौती अवश्य देगी और उसे सुखाकर रहेगी। संकल्प अर्थात तन, मन एवं भावना की ऊर्जा को एकनिष्ठ कर देना, किसी एक कार्य में संपूर्णता के साथ स्वयं को झोंक देना।

टिटिहरी संकल्प ले चुकी थी और अनवरत अपनी चोंच से रेत भरकर समुद्र को पाटने का कार्य कर रही थी। इधर समुद्र नादान टिटिहरी का उपहास कर रहा था। वह कह रहा था—"टिटिहरी! तुम मूर्ख हो, दुर्बल हो, वापस चली जाओ, क्यों अपने प्राण गँवाने में तुली हुई हो। तुम भला क्या मुझे रेत से भर सकोगी? तुम मेरे विस्तार से परिचित नहीं हो। इस सृष्टि में ऐसा कौन है जो मेरी अथाह एवं विशाल जलराशि को सुखा सकता है। यह असंभव कार्य न तो कभी हुआ है और न ही भविष्य में ऐसा होने की कोई संभावना है। अपना जीवन प्यारा है तो ऐसी मूर्खता मत करो और यहाँ से उड़कर चली जाओ।" ऐसा कहते हुए समुद्र के शब्दों में अहंकार की गंध थी और मन में अपने अपराजित होने का गर्व।

समुद्र अपने थप्परनाद से एक नादान टिटिहरी पर इस प्रकार कटाक्ष कर रहा था और उसका उपहास करने में जुटा हुआ था। समुद्र के सारे व्यंग्यों को उपेक्षित कर टिटिहरी अनवरत अपने कार्य में जुटी हुई थी। समुद्र अपनी ऊँची-ऊँची लहरों में चोंच भर रेत को वैसे के वैसे किनारे फेंक देता था। एक दुर्बल एवं कमजोर जीव का सामना एक महाबलशाली से हो रहा था। एक अपने बल के मद से चूर था और दूसरी ओर एक नादान जीव अपना अधिकार पाने के लिए जीवन तक उत्सर्ग कर देने के लिए तत्पर एवं सतत क्रियाशील था।

इस सबसे बेखबर टिटिहरी बिना हारे, बिना थके, बिना डरे बोली—"समुद्रदेव! मैं पूर्णत: आश्वस्त हूँ कि आप मुझसे लाखों-करोड़ों गुना अधिक शक्तिशाली हैं। मैं आपका सामना भला कैसे कर सकती हूँ और न ही मुझे आपसे कोई संघर्ष ही करना है। आप मेरे दुश्मन नहीं हैं और न ही आपसे कोई दुश्मनी है। मैंने तो आपसे बड़ा अनुनय-विनय किया, बड़ी विनती की कि आप मेरे अंडों को वापस लौटा दें।"

थोड़ा रुककर टिटिहरी आगे बोली—"मेरे अंडे आपके लिए हो सकता है कि अर्थहीन हों, पर वे मेरे लिए मेरी एकमात्र धरोहर हैं, अमूल्य हैं, मेरा जीवन हैं। मेरे अंडों से मेरे चूजे निकलेंगे। मैं उन्हें अपनी चोंच से भोजन कराऊँगी। उनका भरण-पोषण करूँगी। उन्हें उड़ना सिखाऊँगी, फिर अपना भरा-पूरा परिवार होगा और हम सुख-शांति से रहेंगे। पर आपने हठपूर्वक कहा कि आप मेरे अंडे वापस नहीं लौटाएँगे। आपने कहा कि अपनी सामर्थ्य हो तो अंडे वापस ले लो और इसलिए मैं अपने अंडे वापस लेने के लिए अपनी सामर्थ्यानुसार कार्य कर रही हूँ।"

समुद्र ने यह सुनकर अट्टहास किया और कहा—"नादान टिटिहरी! मैंने कहा और तुमने मान लिया। मैंने तो मजाक में कहा था कि अपने अंडे वापस ले लो। क्या तुम्हें सच में लगता है कि इस विशाल जलराशि से तुम अपने अंडे वापस निकाल सकोगी।" टिटिहरी ने कहा—"समुद्रदेव! ये अंडे मेरा जीवन हैं, मेरे अस्तित्व का प्रश्न हैं और जहाँ ऐसे प्रश्न होते हैं, वहाँ एक जीवन तो क्या अनगिनत जीवन उत्सर्ग किए जा सकते हैं। मुझे परिणाम की परवाह नहीं है। मैं तो अपनी संपूर्ण क्षमता से यह कार्य कर रही हूँ। कहते हैं कि दुर्बल एवं अशक्त का उपहास नहीं उड़ाया जाता; क्योंकि इनके साथ स्वयं भगवान खड़ा होता है और जिसके साथ भगवान खड़ा है तो उसके साथ भगवान का बल जुड़ जाता है। क्या आपका बल भगवान के बल से अधिक है?" संकल्प में बल हो तो निर्बल के स्वर भी घातक हो जाते हैं।

टिटिहरी का हृदय दरद से भर उठा था और समुद्र का अहंकार निरंतर फूलता जा रहा था। समुद्र ने कहा—"टिटिहरी! पर तुम्हारे साथ भगवान कहीं खड़े दिखाई तो नहीं दे रहे हैं।" टिटिहरी अपनी चोंच से रेत भरकर बिलख कर भगवान से प्रार्थना करती कि उसे अपने अंडे वापस मिल जाएँ। ऐसा संभव नहीं है कि भगवान को सच्चे हृदय से पुकारा जाए और वे सहायता करने के लिए उपस्थित न हों। भगवान ने भी टिटिहरी की पुकार सुन ली और न जाने कहाँ से वहाँ महातपस्वी महर्षि अगस्त्य आ पहुँचे। उन्होंने टिटिहरी को देखा जो सब कुछ भुलाकर अपने कार्य में निमग्न थी। ऋषि अगस्त्य ने उससे पूछा—"क्यों टिटिहरी! यह क्या कर रही हो? समुद्र में रेत क्यों डाल रही हो?" टिटिहरी ने अपनी दुःख भरी कहानी महर्षि अगस्त्य को सुना दी। उसे सुनकर ऋषि अगस्त्य का हृदय टिटिहरी के प्रति करुणा से भर उठा और समुद्र के अहंकार के प्रति वह आक्रोशित हो उठे।

ऋषि अगस्त्य ने कड़क स्वर से समुद्र को आदेश दिया और कहा—"ऐ समुद्र! इस टिटिहरी के अंडे वापस कर दो। एक दुर्बल को सताने में तुम्हें क्या खुशी मिल रही है, तुम तो बलशाली हो, तुम्हें तो इसकी सहायता करनी चाहिए थी।" समुद्र ने प्रत्युत्तर दिया—"आपका आदेश मानने को मैं विवश नहीं हूँ। यदि टिटिहरी के प्रति आपको इतनी सहानुभूति है तो आप उसे अंडे स्वयं ढूँढ़कर क्यों नहीं दे देते!" समुद्र का दंभ अपनी लहरों की भाँति उफन रहा था। वह ऋषि अगस्त्य के तप की विशाल एवं व्यापक ऊर्जा से पूर्णतः अपरिचित था। समुद्र ऋषि के लिए चुल्लू भर पानी के समान था, परंतु इससे अनजान वह स्वयं को महाबलशाली समझ बैठा था। अबकी बार उसका सामना एक महातपस्वी से था।

ऋषि अगस्त्य ने अपनी तप-ऊर्जा का आह्वान किया। तपस्या में अतुलनीय सामर्थ्य है और उस ऊर्जा से वह सब संभव है, जिसे सामान्य जन कपोल-कल्पना मानकर बैठ जाते हैं। तप-ऊर्जा के प्रभाव से देखते ही देखते ऋषि अगस्त्य ने समूचे समुद्र को अपनी हथेली में ले लिया। विशाल समुद्र उनकी हथेली में समा गया। अब समुद्र को अपने अस्तित्व का संकट प्रत्यक्ष होने लगा। वह भयभीत होने लगा। ऋषि धीरे-धीरे उसे पीने लगे। समुद्र का अस्तित्व ऋषि के पेट में समाहित हो विलीन होने लगा। उसे अपने अस्तित्व के मिटने की विवशता समझ में आने लगी।

समुद्र भयाक्रांत हो उठा और बोला—"हे ऋषिवर! मुझे क्षमा कर दें। मुझे अब सब कुछ समझ में आ गया है। एक दुर्बल के सामने मैंने अपने अहंकार का निर्लज्ज प्रदर्शन किया है, पर अब मैं जान गया हूँ कि संसार में अहंकार का कोई स्थान नहीं है। जिसका कोई नहीं होता उसके भी भगवान होते हैं। मैं अभी, इसी क्षण टिटिहरी के अंडे वापस किए देता हूँ। आप मुझे क्षमा कर दें। भविष्य में मैं अपनी शक्ति एवं बल का नियोजन अहंकार प्रदर्शन में नहीं, बल्कि जनकल्याण के लिए ही करूँगा।"

ऋषि अगस्त्य ने समुद्र को क्षमा अवश्य कर दिया, परंतु समुद्र को अपना अस्तित्व गँवाना पड़ा। समुद्र के सूखते ही टिटिहरी ने अपने अंडे वहाँ से उठाए और महर्षि अगस्त्य के चरणवंदन कर अपने गंतव्य की ओर खुशी-खुशी उड़ गई। बाहुबली के अहंकार पर निर्बल की भक्ति की विजय हुई। ✿

फोन-व्यवस्था

कभी-कभी पाठकों को फोन न मिलने की शिकायत होती है, अतः फोन कनेक्शन और बढ़ा लिए गए हैं। सभी फोन नंबर निम्न प्रकार हैं—

०५६५-२४०३९४०, २४००८६५, २४०२५७४, ०९९२७०८६२९९, ०७५३४८१२०३७, ०७५३४८१२०३८, ०७५३४८१२०३९ कार्यालय का समय १० से ६ है। इसी समय में फोन किए जाएँ। किसी फोन पर एस० एम० एस० न किया जाए। आंतरिक एक्सचेंज से लगे होने के कारण एस० एम० एस० प्राप्त नहीं किए जा सकेंगे।

►समूह साधना वर्ष◄

मन चंगा तो कठौती में गंगा



गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि '**संत हृदय नवनीत समाना**' अर्थात संत का हृदय मक्खन की तरह कोमल होता है। संत व्यक्ति वह है जिसकी भावनाएँ आकाश की तरह विशाल व गंगा की तरह निर्मल होती हैं। ऐसे व्यक्तियों का जीवन ही परोपकारी हो जाता है। इनके लिए अपना कुछ नहीं होता, सब कुछ भगवान का होता है। जब व्यक्ति की अपना हित करने की इच्छा समाप्त हो जाती है और परहित की भावना प्रबल हो जाती है तो ऐसा व्यक्ति संत कहलाने का अधिकारी बनता है। भर्तृहरि संतों के बारे में कहते हैं—'**संतः स्वयं परहिते विहिताभियोगाः**।' अर्थात संत सदा अपने को परहित में लगाए रखते हैं और इस प्रकार ये सतत परोपकार में लीन रहते हैं।

बृहन्नारदीय पुराण में भी संतों के लक्षण बताए गए हैं। इसके अनुसार—जो सब प्राणियों का हित करते हैं, जिनके मन में ईर्ष्या और द्वेष नहीं है, जो जितेंद्रिय, निष्काम और शांत हैं, जो मन-वचन-कर्म से पूर्णरूपेण पवित्र हैं, जो किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाते, जो बदला नहीं लेते, जो परनिंदा नहीं करते, जो सबके हित की बात करते हैं, जो शत्रु-मित्र में समदर्शी हैं, सत्यवादी हैं, सेवा करने को तत्पर रहते हैं, प्रदर्शन और आडंबर से दूर रहते हैं, जिनमें संग्रह के बजाय दान की वृत्ति है, जो मर्यादा का पालन करते हैं, जो सदाचारी और जीवन्मुक्त हैं तथा जो संतोषी और दयालु हैं—वे ही संत हैं।

ये सारे गुण संत रविदास जी में विद्यमान थे। संत रविदास मीराबाई के मार्गदर्शक, कबीरदास जी के समकालीन, धन्ना-पीपा के संगी थे। इनका जन्म जनश्रुति के अनुसार, माघ मास की पूर्णिमा के दिन काशी में हुआ था। बचपन से ही ये पीड़ितों की सेवा में निरत रहते थे। ये भगवान के भक्तों से बड़ा प्रेम करते थे और अपना धन संतों के सत्कार में खरच कर देते थे। इनका यह आचरण इनके पिता को अच्छा नहीं लगता था, अतः ये इनके प्रति क्रुद्ध रहा करते थे। एक बार बात इतनी अधिक बढ़ गई कि उन्होंने कुपित होकर रविदास जी को घर से निकाल दिया और खरच के लिए एक रुपया भी नहीं दिया, परंतु इस बात का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे एक मामूली-सी झोंपड़ी में रहने लगे और अपनी जीविका चलाने के लिए जूतों की सिलाई करते। इससे जो कुछ मिलता, उसका अधिकांश वे साधु-संतों पर व्यय कर देते थे।

संत रविदास जी चर्मकार का कार्य करते थे, परंतु उनका व्यक्तित्व इतना उत्कृष्ट था कि उस समय जात-पाँत को बहुत मानने वाले समाज ने भी उन्हें संत की पदवी दी तथा उनकी महानता को स्वीकार कर लिया। लेकिन संत रविदास जी ने अपने निर्धारित कर्म को नहीं छोड़ा और आजीवन जूते बनाते रहे तथा उन्हें बेचकर अपनी आजीविका चलाते रहे। संत रविदास जी की गणना महान भक्तों में होती है, इसी कारण नाभादास ने भक्तमाल में इनकी चर्चा विशेष रूप से की है। संत कबीर ने संतन में रविदास कहकर इन्हें मान्यता दी है। रैदास जी के लगभग २०० पद मिलते हैं, जिनकी भाषा सरल है, किंतु भाव की तन्मयता के कारण प्रभावशाली है। संत रविदास जी गुरु-भक्ति, नाम-स्मरण, प्रेम, कर्त्तव्य-पालन तथा सत्संग को महत्त्व देते थे।

संत रविदास जी के पास भगवान की एक चतुर्भुजी मूर्ति थी। जब वे श्रीहरि की ओर निहारते, तब उनके मुख से यही निकलता—

प्रभु जी! तुम चंदन, हम पानी।
जाकी अंग अंग बास समानी॥
प्रभु जी! तुम घन, बन हम मोरा।
जैसे चितवत चंद चकोरा॥
प्रभु जी! तुम दीपक, हम बाती।
जाकी जोति बरै दिन राती॥
प्रभु जी! तुम मोती, हम धागा।
जैसे सोनहि मिलत सुहागा॥
प्रभु जी! तुम स्वामी, हम दासा।
ऐसी भक्ति करै रैदासा॥

संत रविदास जी के बारे में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। एक कथा इस प्रकार है कि रविदास जी के पास एक

►समूह साधना वर्ष◄

बार एक साधु पहुँचे और उन्होंने इन्हें पारस पत्थर देने का प्रयास किया तथा उससे एक लोहे के औजार को सोना बनाकर दिखा भी दिया, परंतु रविदास जी ने पारस लेने से इनकार कर दिया। साधु ने इन्हें पारस देने का हठ किया, तो लाचार होकर रविदास जी ने साधु से पारस को छप्पर में खोस देने को कह दिया। एक वर्ष बाद जब वही साधु दोबारा आया, तब उसने पारस के विषय में पूछा। रविदास जी ने बड़ी उदासीनता के साथ कहा— ''जहाँ खोस गए थे, वहीं देख लो, मैंने उसे छुआ भी नहीं है।'' इस कथानक से यह स्पष्ट होता है कि रविदास जी के मन में किसी प्रकार का कोई लोभ नहीं था। उन्होंने अपने जीवन में वह संपदा पा ली थी, जिसके होने पर सांसारिक धन-संपदा का मूल्य तिनके की तरह प्रतीत होता है।

संत रविदास जी ने अपने कर्म को भगवान की पूजा के बराबर स्थान दिया। वे मानते थे कि जो व्यक्ति अपना कर्त्तव्यकर्म पूरे मन से करता है, वही सच्चा धार्मिक व्यक्ति है। इनके बारे में एक बहुत प्रसिद्ध किंवदंती है। एक बार काशी के एक पंडित जी रविदास जी के पास गए। बातों-बातों में गंगा-पूजा की चर्चा चल पड़ी। रविदास जी ने पंडित जी से कहा—''आप कृपा करके मेरी भी सुपारी गंगा जी में चढ़ा दीजिएगा।'' पंडित जी ने हामी भरते हुए उनकी सुपारी अपने पास रख ली। दूसरे दिन जब पंडित जी ने गंगा जी में रविदास जी की सुपारी चढ़ानी चाही, तब गंगा माता ने हाथ ऊँचा करके उस सुपारी को साक्षात् ग्रहण कर लिया और बदले में एक सोने का कंगन दिया। यह देखकर पंडित जी आश्चर्यचकित रह गए।

उन्होंने सोचा कि इतना सुंदर सोने का कंगन मैं रविदास को क्यों दूँ और क्यों न मैं इसे राजा को भेंट कर दूँ, इससे वह मेरे ऊपर प्रसन्न भी होंगे। यह सोचकर पंडित जी ने वह कंगन राजा को भेंट कर दिया और राजा ने रानी को दे दिया। रानी ने जब वह कंगन देखा तो उसका जोड़ी का दूसरा कंगन पाने की जिद करने लगी। राजा ने पंडित को बुलवाया तो घबराकर पंडित ने पूरा घटनाक्रम सुनाया। सब जानकर राजा ने संत रविदास से ही यह प्रार्थना की कि वे माँ गंगा से कंगन का दूसरा जोड़ा माँगें। कहते हैं कि उसके बाद संत रविदास ने अपनी झोंपड़ी में ही एक कठौती में गंगा माता से प्रकट होने की प्रार्थना की। उनकी श्रद्धा-भक्ति से प्रसन्न होकर माँ गंगा उनकी कठौती में आ गईं और उन्हें कंगन का दूसरा जोड़ा अपने हाथों से दे गईं। तभी से यह कहावत बन गई कि '**मन चंगा तो कठौती में गंगा**'।

संत रविदास जी गृहस्थ थे और गृहस्थी के सभी दायित्वों का उन्होंने पालन किया। उनका जीवन केवल गृहस्थों के लिए ही नहीं, वरन संतों के लिए भी आदर्श है। १२० वर्ष की दीर्घायु पाकर वे ब्रह्मलीन हुए। उनके पंथ के अनुयायी अपने को 'रैदासी' कहते हैं। उनका यह मानना है कि अपनी इहलीला पूर्ण कर लेने के उपरांत संत रविदास सदेह गुप्त हो गए हैं। सत्य चाहे जो भी हो, लेकिन आज भी संत रविदास इस संसार में रवि (सूर्य) के समान प्रकाशित हैं।

छोटे बालक ने माँ से पूछा—''माँ! कौआ और कोयल, दोनों ही काले हैं, पर लोग कौए को मारते और कोयल को प्यार क्यों करते हैं?'' माँ ने उत्तर दिया— ''बेटा! सम्मान रूप के आधार पर नहीं, गुणों के आधार पर मिलता है। कोयल मीठी वाणी बोलती है और अपनी इन्हीं भावनाओं की मधुरता के कारण वह सबकी प्रिय बन गई है; जबकि कौआ अप्रिय वचन बोलने के कारण स्वार्थी व धूर्त माना जाता है और जनसामान्य के सम्मान से वंचित रह जाता है।'' रूपवान अपने रूप के कारण दूसरों को क्षणिक रूप से आकर्षित जरूर कर सकते हैं, परंतु दीर्घकाल तक सम्मान के अधिकारी तो गुणवान ही होते हैं।

चंद्रशेखर के आजाद बनने की गाथा



आजादी पाने के लिए देश की बलिवेदी पर अनगिनत क्रांतिकारी बलिदान हो गए। उनमें से एक प्रमुख क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद थे। उनका जन्म २३ जुलाई, १९०६ को श्रावण महीने में शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि को सोमवार के दिन अलीराजपुर (मध्यप्रदेश) के एक गाँव भाँवरा में हुआ। बालक अत्यंत सुंदर, तेजस्वी था, इसलिए उसका नामकरण उसके गुण, रूप के अनुरूप ही रखा गया 'चंद्रशेखर'। बचपन में चंद्रशेखर स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत कमजोर थे।

चंद्रशेखर कट्टर सनातनधर्मी ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे। इनके पिता नेक, धर्मनिष्ठ और दीन-ईमान के पक्के थे और उनमें अपने पांडित्य का कोई अहंकार नहीं था। वे बहुत स्वाभिमानी और दयालु प्रवृत्ति के थे। घोर गरीबी में उन्होंने दिन बिताए थे और इसी कारण चंद्रशेखर की अच्छी शिक्षा-दीक्षा नहीं हो पाई, लेकिन पढ़ना-लिखना उन्होंने गाँव के ही एक बुजुर्ग श्री मनोहरलाल त्रिवेदी से सीख लिया था, जो उन्हें घर पर नि:शुल्क पढ़ाते थे।

बचपन से ही चंद्रशेखर बहुत निर्भीक थे। एक बार दीवाली के समय पर चंद्रशेखर कहीं से रंगीन रोशनी करने वाली दीयासलाई ले आए। वह उस दीयासलाई की एक-एक करके तीली जलाते और फिर उसकी लौ को कुतूहल की दृष्टि से देखते। उनके कई साथी उनके साथ खड़े होकर यह खेल देख रहे थे। किसी की समझ में यह नहीं आ रहा था कि तीली रोशनी कैसे करती है?

"जब एक तीली जलाने पर इतनी रोशनी करती है, तब सारी तीलियाँ एक साथ जलाने पर कितनी रोशनी होगी?"—चंद्रशेखर ने अपने मित्रों से कहा। लेकिन इन सब तीलियों को एक साथ जलाए कौन? इस प्रश्न पर सभी मौन थे और एक अनजाना-सा डर सभी के मनों में व्याप्त था। परंतु चंद्रशेखर ने तो जैसे भय का नाम ही न सुना था और उसी निर्भीकता के साथ वे बोले—"देखो! मैं जलाकर दिखाता हूँ"।

ऐसा कहकर चंद्रशेखर ने सारी तीलियाँ एक साथ जला दीं। तीलियाँ फक्क से जल उठीं और तेज रोशनी हुई। तीलियों के एक साथ जलने से चंद्रशेखर का हाथ भी जल गया, परंतु वह रोया नहीं। उनके सहपाठियों को लगा कि चंद्रशेखर अपने घाव का इलाज कराते वक्त तो शायद रोएँ, परंतु उन्हें आश्चर्य हुआ जब चंद्रशेखर ने हँसते-हँसते, उसी निर्भीकता के साथ अपने हाथ की पट्टी कराई। चंद्रशेखर का बचपन निर्भीकता की ऐसी ही कहानियों से सराबोर रहा।

बचपन से ही चंद्रशेखर में भारतमाता को स्वतंत्र कराने की भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी। इसी कारण उन्होंने स्वयं अपना नाम आजाद रख लिया था। उनके जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना ने उन्हें सदा के लिए क्रांति के पथ पर अग्रसर कर दिया। १३ अप्रैल, १९१९ को जलियाँवाला बाग अमृतसर में जनरल डायर ने जो नरसंहार किया, उसके विरोध में तथा रौलट एक्ट के विरुद्ध जो जन-आंदोलन प्रारंभ हुआ था, वह दिन-प्रतिदिन और जोर पकड़ता जा रहा था।

इसी आंदोलन के दौरान प्रिंस ऑफ वेल्स बंबई आए और वे जहाँ-जहाँ गए, वहाँ-वहाँ भारतीयों ने उनका बहिष्कार किया। जब राजकुमार बनारस पहुँचने वाले थे, उस समय वहाँ भी उनके बहिष्कार का जुलूस निकला। बनारस के दशाश्वमेध घाट वाले जुलूस में युवा चंद्रशेखर अपने साथियों के साथ शामिल थे। पुलिस वाले जुलूस को तितर-बितर करने के लिए लाठी घुमाते हुए आ रहे थे। यह देख चंद्रशेखर के मित्रगण लाठी के प्रहार से बचने के लिए इधर-उधर फैल गए। केवल चंद्रशेखर ही अपने स्थान पर निडर खड़े रहे।

इसी बीच कुछ आंदोलनकर्त्ता, जो एक विदेशी कपड़े की दुकान पर धरना दे रहे थे, उन पर पुलिस का एक दारोगा डंडे बरसाने लगा। यह अत्याचार चंद्रशेखर से देखा नहीं गया और उन्होंने पास पड़ा एक पत्थर उठाकर उस दारोगा के माथे पर दे मारा। निशाना अचूक था। दारोगा घायल होकर वहीं जमीन पर गिर गया, लेकिन

चंद्रशेखर को ऐसा करते हुए एक सिपाही ने देख लिया और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया, लेकिन इस गिरफ्तारी से चंद्रशेखर जरा भी भयभीत या विचलित नहीं हुए। उनकी गिरफ्तारी के बाद पुलिस वालों ने उनके कमरे की तलाशी ली तो उनके कमरे में लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, महात्मा गांधी समेत अनेक राष्ट्रीय नेताओं के चित्र मिले, जिसके आधार पर पुलिस वालों ने उन पर राष्ट्रद्रोह का आरोप लगा दिया।

इसके बाद उन्हें थाने में ले जाकर हवालात में बंद कर दिया गया। दिसंबर की कड़ाके वाली ठंढ की रात थी और ऐसे में चंद्रशेखर को ओढ़ने-बिछाने के लिए कोई बिस्तर नहीं दिया गया; क्योंकि पुलिस वालों का ऐसा सोचना था कि यह लड़का ठंढ से घबरा जाएगा और माफी माँग लेगा, किंतु ऐसा नहीं हुआ। यह देखने के लिए लड़का क्या कर रहा है और शायद वह ठंढ से ठिठुर रहा होगा, आधी रात को इंसपेक्टर ने चंद्रशेखर की कोठरी का ताला खोला तो वह यह देखकर आश्चर्यचकित हो गया कि चंद्रशेखर दंड-बैठक लगा रहे थे और उस कड़कड़ाती ठंढ में भी पसीने से नहा रहे थे।

दूसरे दिन चंद्रशेखर को न्यायालय में मजिस्ट्रेट के सामने ले जाया गया। उन दिनों बनारस में एक बहुत कठोर मजिस्ट्रेट नियुक्त था। बात-बात में वकीलों को वह सुना-सुनाकर कहता कि किसी को पकड़कर छोड़ना तो चिड़ीमार का काम होता है, किसी मजिस्ट्रेट का काम थोड़े ही है! मजिस्ट्रेट का काम तो सजा देना होता है। पुलिस वाले अपराधी को सामने लाए कि दो सजा। उसी अँगरेज मजिस्ट्रेट के सामने १५वर्षीय चंद्रशेखर को पुलिस ने पेश किया।

मजिस्ट्रेट ने बालक से पूछा—"तुम्हारा नाम?" बालक ने निर्भीकता से उत्तर दिया—"आजाद"। "पिता का नाम?"—मजिस्ट्रेट ने कड़े स्वर में पूछा। ऊँची गरदन किए हुए बालक ने तुरंत उत्तर दिया—"स्वाधीन"। युवक की हेकड़ी देखकर न्यायाधीश क्रोध से भर उठा। उसने फिर पूछा—"तुम्हारा घर कहाँ है?" चंद्रशेखर ने गर्व से उत्तर दिया—"जेल की कोठरी"। न्यायाधीश ने क्रोध में चंद्रशेखर को १५ बेंत लगाने की सजा दी।

बेंत लगाने के लिए चंद्रशेखर को जेलखाने में ले जाया गया। बनारस का जेलर बड़े ही क्रूर स्वभाव का व्यक्ति था। कैदियों को सजा देने में उसे बड़ा आनंद आता था और इस कार्य में वह क्रूरता की चरम सीमा पर पहुँच जाता था। इसलिए बेंत लगवाने का कार्य उसे ही सौंपा गया। कोड़े लगवाने के लिए उसने चंद्रशेखर को एक तख्ते से बँधवा दिया। इस समय उनके शरीर पर एक लँगोट के सिवाय अन्य कोई वस्त्र नहीं था। शरीर से खाल अलग न हो जाए, इसके लिए उन दिनों कैदियों के शरीर पर विशेष लेप लगाया जाता था। लेप लगाने के बाद उसने बेंत लगाने वाले जल्लाद को बेंत लगाने का आदेश दिया और फिर चंद्रशेखर पर तड़ातड़ बेंत पड़ने लगे।

लेकिन चंद्रशेखर भी अपनी हिम्मत के पक्के थे। उनकी हिम्मत व सहनशीलता ने बनारस के उस निर्दयी जेलर को भी हिला दिया। शरीर पर जबरदस्त पड़ने वाली बेंतों की मार भी चंद्रशेखर के ओंठों की मुस्कराहट और चेहरे पर चमचमाते देशभक्ति के तेज को न छीन सकी। हर बेंत पर वह 'भारतमाता की जय' और 'वन्दे मातरम्' का नारा लगाते रहे। यह सब देखकर वह जेलर झुँझला उठा और बोला—"किस मिट्टी का बना है यह लड़का?" पास खड़े जेल के अन्य अफसर और उपस्थित लोग भी चंद्रशेखर की इस सहनशक्ति को बहुत आश्चर्य के साथ देखते रहे।

१५ बेंतों की सजा के पश्चात, जेल के नियमानुसार तीन आने पैसे, जेलर ने चंद्रशेखर को दिए, लेकिन चंद्रशेखर ने वह पैसे लेकर जेलर के मुँह पर ही फेंक दिए। घावों पर जेल के डॉक्टर ने दवा लगा दी, फिर भी खून बहना बंद नहीं हुआ। वह किसी तरह पैदल ही घिसटते हुए जेल से बाहर निकले, लेकिन अब तक चंद्रशेखर की वीरता की कहानी बनारस के घर-घर में पहुँच गई थी और जेल के दरवाजे पर शहर की जनता फूल-मालाएँ लेकर उनका स्वागत करने के लिए पहुँच चुकी थी। सबने मालाएँ पहनाकर उनका स्वागत किया और उन्हें अपने कंधों पर उठा लिया। इसके साथ ही इन नारों से आकाश गूँज उठा—'चंद्रशेखर आजाद की जय'; भारतमाता की जय'; 'महात्मा गांधी की जय'।

इसके अगले दिन बनारस से प्रकाशित होने वाले 'मर्यादा' नामक समाचारपत्र में एक लेख चंद्रशेखर आजाद की फोटो सहित 'वीर बालक आजाद' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। उस समय इस समाचारपत्र के संपादक बाबू संपूर्णानंद जी थे, जो उस समय कांग्रेस के बड़े नेता तथा गांधी जी के अनुयायी थे।

इस तरह १५ बेंतों की सजा ने किशोर अवस्था में ही चंद्रशेखर को एक लोकप्रिय नेता के रूप में प्रसिद्ध कर दिया। चंद्रशेखर को मिलने वाली सजा दरदनाक व क्रूर अवश्य थी, लेकिन इस घटना के बाद उनकी भारतमाता के प्रति श्रद्धा और बलवती हुई, क्रांति की चिनगारियाँ उनके मन में धीरे-धीरे आग के रूप में परिवर्तित होने लगीं। आजादी का परवान उनके सिर पर चढ़ गया और अब उनके जीवन में केवल एक ही संकल्प शेष रह गया और वह था—देश को अँगरेजों की गुलामी से आजाद कराना।

पंद्रह वर्ष की उम्र में घटी यह घटना उनके जीवन का वह महत्त्वपूर्ण अध्याय थी जिसके कारण वह चंद्रशेखर तिवारी से चंद्रशेखर 'आजाद' बने और क्रांतिकारियों की श्रेणियों में गिने जाने लगे। हृष्ट-पुष्ट शरीर, दृढ़प्रतिज्ञ व स्थिर एकाग्र मन वाले चंद्रशेखर आजाद बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कम उम्र में ही चंद्रशेखर आजाद अनेकानेक युवाओं तथा भगत सिंह, सुखदेव जैसे क्रांतिकारियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बने और अपने जीवन की आहुति देकर देश की स्वाधीनता का संकल्प पूर्ण कर गए।

राजसूय यज्ञ के समापन के अवसर पर महाराज तुर्वस ने एक वृहद् सांस्कृतिक समारोह का आयोजन किया। राजा के विशेष आग्रह पर महर्षि जैमिनी भी इस समारोह में सम्मिलित हुए। देवपूजन के पश्चात राजकुमारी अर्णिका ने भावभरी नृत्य-नाटिका प्रस्तुत करनी प्रारंभ की। जहाँ एक ओर पूरी सभा इस प्रस्तुति को मुग्ध होकर देख रही थी, वहीं दूसरी ओर महर्षि की आँखों से अविरल अश्रुधार बह निकली। जैसे ही राजकुमारी की दृष्टि महर्षि पर पड़ी, उसके पाँव वहीं रुक गए। यह देख महाराज तुर्वस ने भी अपनी सभा विसर्जित कर दी। एकांत होते ही, राजकुमारी ने महर्षि से पूछा—"क्या मुझसे कोई भूल हुई महर्षि! आपकी आँखों से गिरते इन आँसुओं का कारण पूछ सकती हूँ?"

महर्षि बोले—"नहीं पुत्री! तुम्हारी प्रस्तुति तो त्रुटिहीन है। ये अश्रु तो भविष्य की आशंका के हैं। मुझे दिखाई पड़ता है कि आज जो संगीत शास्त्रों पर आधारित है और मानवीय चेतना में संस्कार जाग्रत करने का माध्यम है, वही एक दिन कामुकता और अश्लीलता भड़काने का साधन बनेगा। कलियुग में ऐसा समय भी आएगा कि जब लोग संगीत को दैवीय गुणों के लिए नहीं, दूषित भावनाओं के विस्तार के लिए उपयोग करेंगे।" चिंतातुर राजकुमारी अर्णिका ने प्रश्न किया—"क्या कोई उपाय है महर्षि! जिससे भारतीय संगीत की परंपरा अक्षुण्ण रहे और इसकी मर्यादा को चोटिल न होना पड़े?"

महर्षि ने उत्तर दिया—"उपाय एक ही है कि भारतीय चिंतन में उस वैदिक संस्कृति के गुण बीज रूप में सुरक्षित रहें, जो आज इसे गौरवान्वित करने का आधार बने हैं।" आज महर्षि जैमिनी की आशंका सत्य होती दिखाई दे रही है, जहाँ कामुक एवं भड़कीला संगीत लोकप्रिय है और शास्त्रीय संगीत लुप्त-सा प्रतीत होता है। यदि संस्कृति का पुनरोत्थान करना है तो संगीत की दिशा भी बदलनी होगी; क्योंकि भगवान के लिए समर्पित संगीत ही सामाजिक समरसता ला सकता है।

विश्वास ही है व्यक्तित्व विकास का आधार

'विश्वास' हमारे व्यक्तित्व की एक ऐसी विभूति है, जो आश्चर्यजनक ढंग से हमसे बड़े से बड़े और महान कार्य करा लेती है। जीवन में विश्वास के दो ही रूप हैं— आत्मविश्वास और ईश्वरविश्वास। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, परंतु विश्वास यों ही पैदा नहीं हो जाता। विचार और भाव की ऊर्जा जहाँ केंद्रित एवं सघन हो जाती है तो वहाँ विश्वास पैदा होता है। ऐसा विश्वास अत्यंत दृढ़, अविचल एवं अडिग होता है। यह डिगता नहीं, क्योंकि विचारों की ऊर्जा कंपित नहीं होती है और न ही भाव उद्वेलित होते हैं। दोनों की स्थिरता एवं सघनता एक ऐसे विश्वास को जन्म देती है, जो किन्हीं भी परिस्थितियों में, किसी भी अवस्था में और कैसी भी चुनौती में विचलित नहीं होता। ऐसा विश्वास यदि परमपिता परमात्मा के पावन चरणों में निछावर हो जाए तो व्यक्ति स्वयं को बलिदान कर देता है, परंतु अपने विश्वास को नहीं।

विश्वास वो नहीं, जो किसी भी आघात से टूटने-बिखरने लगे। विश्वास उस टिमटिमाते दीपक की लौ नहीं है, जो फूँक मारने से भी कंपित हो जाए; बल्कि वह तो ऐसा दावानल है, जो आँधी और तूफाँ से बुझने के बजाय और भी प्रज्वलित हो उठता है। विश्वास की प्रबलता एवं दृढ़ता की विपरीतताओं और चुनौतियों में ही परीक्षा होती है।

सुदृढ़ विश्वास किसी भी चुनौती से घबराता नहीं, बल्कि उससे पार पाने के लिए अपनी राह निकालकर आगे अग्रसर हो जाता है। विश्वास यदि प्रबल एवं प्रखर हो तो भय-भ्रम, शंका-कुशंका, संदेह-संशय आदि नहीं होते हैं। ये सारी बातें तो आत्मविश्वास की कमी के कारण पैदा होती हैं और मन एवं हृदय को खोखला कर देती हैं। खोखले मन एवं हृदय के अंदर प्रखर आत्मविश्वास का निवास संभव नहीं है, यह दृढ़ मन एवं स्थिर संवेदनशील हृदय में निवास करता है। जब मन एवं हृदय स्थिर, शांत एवं संतुलित होते हैं, तब ही प्रबल आत्मविश्वास का दिग्दर्शन होता है, जो कभी भी डिगता नहीं है, हिलता नहीं है।

आत्मविश्वास का धनी किसी भी भीषण एवं भयावह परिस्थितियों से भयभीत नहीं होता है। ईश्वर पर विश्वास करके संसार के किसी भी भय एवं प्रलोभन से विचलित नहीं होता है। संसार में विश्वास को डिगाने के लिए दो चीजें होती हैं, मनुष्य या तो भय से विश्वास खोता है या लोभ से विचलित होता है। ऐसा विश्वास अत्यंत दुर्बल एवं अशक्त होता है। संसार भय बनाकर विश्वास तोड़ता है, और यदि कोई भयभीत नहीं होता है तो यह प्रलोभन के दृश्य दिखाकर उसे डिगाने का प्रयास करता है। वह विश्वास ही कैसा, जो भय से भयभीत हो जाए और लोभ से विचलित हो उठे?

महाराणा प्रताप का आत्मविश्वास किन्हीं भी परिस्थितियों में डिगा नहीं। एक ओर अकबर का विशाल साम्राज्य तथा दूसरी ओर अपने राजमहल को छोड़ वन-जंगल में अपने नन्हें-नन्हें बच्चों के साथ भूखा-प्यासा भटकना। उन्हें साम्राज्य का लोभ दिखाकर समर्पण का प्रस्ताव भी भेजा गया, परंतु उनका आत्मविश्वास तनिक भी नहीं डिगा और वे अंत तक संघर्ष करते रहे। राणा प्रताप न तो भयभीत हुए और न लोभ से डिगे। मीराबाई का भावपूर्ण विश्वास सदैव अपने कृष्ण के प्रति समर्पित रहा। बचपन से विवाह के पश्चात तक पल-पल लांछन, अपमान, तिरस्कार एवं षड्यंत्रों के बीच भी मीरा अपने कृष्ण के प्रति अगाध आस्था, श्रद्धा एवं विश्वास से डूबी रही। मीरा को जहर दिया गया तो उसने जहर के प्याले को अपने अधरों से लगा लिया। जहर पीने के बाद भी मीरा का ईश्वर के प्रति विश्वास कमजोर नहीं हुआ बल्कि और भी प्रगाढ़ हो गया।

संत मंसूर को सूली पर लटका दिया। सूली में टाँगने से पूर्व उनके हाथ को निर्ममता से काट दिया गया, फिर पैरों को शरीर से अलग कर दिया गया। जल्लाद जब उनकी जीभ काटने को आया तो उन्होंने कहा—"जरा ठहर जाओ। मुझे कुछ कहना है। देरी के लिए माफ करना, पर जीभ कटने के बाद मैं परमेश्वर से इस जिह्वा से कुछ कह न सकूँगा। इस जीवन के अंत में केवल दो

शब्द परमात्मा से गुहार लगा लेने दो।'' और उन्होंने कहा—''हे परमात्मा! तुम इस नादान इनसान को माफ कर देना। यह तो अपना कर्त्तव्य निभा रहा है। इसने मेरी यात्रा को आगे बढ़ने में सहायता की है। मेरी मंजिल की दूरी को कम कर दिया है। अत: इसे माफ कर देना और मेरे जो पुण्य हैं उन्हें इसे देकर सुखी एवं समृद्ध बना देना।'' मंसूर का सिर काटकर सूली पर चढ़ा दिया गया। इस जघन्य एवं क्रूरता के बावजूद परमात्मा के प्रति उनका विश्वास प्रगाढ़तम ही होता गया और उन्होंने सूली पर टाँगने वालों के प्रति अंत तक सद्भाव बनाए रखा।

इसी तरह प्रसिद्ध सूफी संत राबिया को भी समाज में घनघोर अपमान, तिरस्कार एवं पीड़ा मिली। आँखों से न देखे जाने वाले दृश्य तथा कानों से न सुनी जा सकने वाली निंदा के बावजूद परमात्मा के प्रति उनकी निष्ठा, विश्वास एवं श्रद्धा में कमी नहीं आई, बल्कि उसमें और सघनता होती गई। इस तरह ईश्वर पर विश्वास करने वाले कभी भी और किन्हीं भी चीजों से विचलित नहीं होते।

प्रभु के प्रति विश्वास रखने वाले संसार से एवं इसके किसी भी आकर्षण एवं भय से परेशान नहीं होते। किसी भी स्थिति-परिस्थिति में इनका विश्वास डोलता-डगमगाता नहीं है। अत: हमें भी अपने विश्वास को दृढ़ एवं मजबूत बनाए रखना चाहिए, ताकि हम सदाचरण एवं सत्कर्म करते रह सकें; क्योंकि ईश्वर विश्वास ही जीवन के विकास का आधार है। ✿

हेमकूट राज्य के राजकुमार जीमूतवाहन अपने मित्रों के साथ समुद्र तट पर भ्रमण को निकले। मार्ग में एक छोटा-सा पर्वत पड़ा, जिसका नाम गोकर्ण था। उन्होंने देखा कि वहाँ अस्थियों के बड़े-बड़े ढेर लगे हुए थे। उन्हें देख राजकुमार ने अपने मित्र वसु से इसका कारण पूछा। वसु ने उत्तर दिया—''ये नागों की अस्थियों का ढेर है। नागों व गरुड़ों की पुरानी शत्रुता है, पर नाग शारीरिक बल में गरुड़ों से कमतर हैं, अत: उन्होंने यह समझौता किया है, जिसके अनुसार प्रतिदिन एक नाग अपने वध हेतु गरुड़ के पास आता है और उसकी क्रोध ज्वाला शांत करता है।''

यह सुनकर राजकुमार का हृदय दयार्द्र हो उठा और उन्होंने इस अन्याय का प्रतिकार करने का प्रण किया, पर इतनी शक्ति उनमें नहीं थी कि वे गरुड़ को परास्त कर पाते। इसलिए वे नाग वेश में गरुड़ के समक्ष पहुँच गए। गरुड़ ने उनका वध कर दिया, पर उसे आश्चर्य हुआ कि प्रतिदिन नाग मृत्यु के समय रोते-चीखते हैं, फिर यह क्यों नहीं चिल्लाया? पता करने पर उसे ज्ञात हुआ कि यह शव राजकुमार जीमूतवाहन का है। वह यह जानकर ग्लानि से भर उठा और बोला—''संसार में ऐसी भी विभूतियाँ हैं, जो परोपकार हेतु अपने प्राण दे देती हैं और एक मैं हूँ, जो अपनी शत्रुता के लिए अनेकों निर्दोषों का वध कर देता हूँ।'' उस दिन से गरुड़ ने नागों की बलि लेना बंद कर दिया। जीमूतवाहन अपने प्राणों की आहुति देकर भी अमर हो गए।

संशयरहित साधना के मिलते हैं सुपरिणाम



आदिशक्ति की लीलाकथा का प्रत्येक कथा-प्रसंग, प्रत्येक श्लोक-मंत्र जगन्माता का स्वरूप है। इसमें उनकी अनंत शक्ति का अभिन्न व अविभाज्य अंश है। यही वजह है कि आदिशक्ति की लीलाकथा का पाठ, इसके किसी भी श्लोक-मंत्र का जप जीवन के संकटों, संघर्षों का सहज विनाश करता है। इससे पीड़ा, परिताप, शोक-संताप का स्वयं ही शमन हो जाता है। यह ऐसा सत्य है, जिसकी अनुभूति भक्तजन युगों से कर रहे हैं और युगों तक करते रहेंगे। इस हेतु किसी को कुछ अधिक नहीं करना पड़ता। न तो कोई विशेष साधन और न कोई विशेष साधना। बस, माता से अपने संबंधों पर विश्वास पर्याप्त है। वह हमारी, हम सबकी, हममें से हरेक की प्यारी माँ है और हम, हम सब, हममें से हरेक उसकी प्यारी संतान। इससे अधिक कुछ भी आवश्यक या अनिवार्य नहीं है। भाव सघन हो, पुकार प्रगाढ़ हो तो माँ बरबस आ जाती है।

इस सच को हम कभी भी अनुभव कर सकते हैं। हर क्षण, हर पल इस सत्य की अनुभूति की जा सकती है। हो सकता है इसे पढ़कर किसी के मन में प्रश्न चुभे, जिज्ञासाएँ जन्में, शंकाएँ अंकुरित हों, संदेह उपजे और संशय पैदा हो। ऐसे लोग कह सकते हैं कि तब मंदिरों के बाहर लगी भीड़ का जमावड़ा क्यों संकट मुक्त नहीं हो जाता? माता का भजन-कीर्तन व जागरण करने वाले सबका दु:ख क्यों नहीं हर लेते? ये प्रश्न वाजिब तो हैं, पर सतही हैं। हालाँकि इनके उत्तर की खोज के लिए गहराई में उतरने की जरूरत है। गहरे उतर कर जो सत्य समझ में आता है कि माँ की करुणा, कृपा तो सर्वव्यापी है, सर्वत्र है, लेकिन इसकी अनुभूति न हो पाने के कारण स्वयं हमारे ही अंत:करण हैं। अवरोध अन्यत्र कहीं नहीं, बल्कि स्वयं में हैं। ये अवरोध हैं, स्वयं अपनी शंकाएँ, अपने संशय और अपने ही संदेह।

इन्हीं सबके कारण अपने मन की स्थिरता, एकाग्रता भंग होती रहती है। अस्थिर मन, चंचल मन, माँ की चेतना की ओर न तो उन्मुख होता है और न ही जुड़ता है; जबकि आस्था, विश्वास, श्रद्धा, मन को स्थिर, दृढ़ व एकाग्र करते हैं। इससे माँ की चेतना, उनकी शक्ति के अवतरण का समर्थ आधार तैयार होता है। जीवन में उनके समर्थ संरक्षण की सहज उपस्थिति व अनुभूति होने लगती है। माँ के संस्पर्श, उपस्थिति व अनुभूति से फिर सभी असंभव, सहज संभव होने लगते हैं। यह सत्य सहज भी है और स्वाभाविक भी, जब और जहाँ सृष्टि को जन्म देने वाली मूल ऊर्जा है, तब और वहाँ कुछ भी असंभव कैसे हो सकता है। ऐसा होने पर अघटित घटित होते हैं और असंभव संभव में परिवर्तित होते हैं।

आदिशक्ति की लीलाकथा माँ की इसी कृपा की गाथा है। इसी सत्य-अनुभूति की कथा है। इसी की चर्चा पिछली कड़ियों में की जाती रही है। जगन्माता की इस लीलाकथा की पिछली कड़ी में महर्षि मेधा, महाराज सुरथ से कहते हैं—"हे राजन्! वास्तव में तो वे देवी नित्य स्वरूपा ही हैं। संपूर्ण जगत उन्हीं का रूप है तथा उन्होंने समस्त विश्व को व्याप्त कर रखा है।" इतना कहने के बाद महर्षि मेधा आगे कहते हैं—

तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा॥१/१/६५॥

अर्थ=हे राजन्! तथापि उनका प्राकट्य अनेक प्रकार से होता है। यह मुझसे सुनो। यद्यपि वे नित्य और अजन्मा हैं, तथापि जब देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए प्रकट होती हैं, उस समय लोक में उत्पन्न हुई कहलाती हैं।

भक्त कवि का काव्यानुवाद—

देव कार्य के सिद्धि हेतु वह, है होती जब आविर्भूत।
नित्या होकर भी कहलाती, इस जगती में तब सम्भूत॥

आदिशक्ति जगन्माता भवानी शाश्वत हैं, नित्य हैं। उनका न तो कोई आदि है और न अंत। वह तो अनादि है, अनंत हैं, नित्य हैं, सनातन हैं। न तो उनका जन्म होता है और न मृत्यु। इसके बावजूद भी वे देव कार्य के लिए, जगती में देवत्व की अभिवृद्धि व समृद्धि के लिए समय-समय पर स्वयं को प्रकट करती हैं। उनका यह प्रकट

►समूह साधना वर्ष◄

होना केवल पुराण कथाओं तक सीमित नहीं है। जब कभी कोई अपने स्वार्थ व अहं से परे होकर उन्हें पुकारता है, वह अवश्य उसकी सच्ची भावनाओं में अवतरित होती हैं। हाँ! उन्हें पुकारने का उद्देश्य अवश्य वासना, तृष्णा व लोभ-लिप्सा से मुक्त सात्त्विक एवं पवित्र होना चाहिए।

जगन्माता की कृपा की ऐसी ही एक घटना स्मरण हो आई है, जिसका उल्लेख करना यहाँ सर्वथा प्रासंगिक है। यह घटना मुगलकालीन भारत के महान कवि व माता के भक्त श्रीपति के जीवन की है। भक्तप्रवर श्रीपति माँ भगवती के परम उपासक थे। श्रीदुर्गासप्तशती का पाठ उनका नित्यप्रति का नियम था। उनका विश्वास था कि श्रीदुर्गासप्तशती का प्रत्येक श्लोक माता की शक्ति व कृपा का महत्त्वपूर्ण अंश है। श्रीदुर्गासप्तशती को वह माँ भवानी का शब्दरूप ही मानते थे। अविचल विश्वास, असीम भक्ति एवं अपार श्रद्धा थी—उनकी माँ भवानी पर। अपनी बुद्धिमत्ता, जगन्माता की कृपा व स्वयं के सद्गुणों के कारण वह मुगल बादशाह अकबर के अत्यंत प्रिय थे।

बादशाह अकबर को उनके व्यक्तित्व की आध्यात्मिक सुगंध अतिशय प्रिय थी। जब कभी उनका मन अशांत या विचलित होता, भक्तप्रवर श्रीपति के विचार उन्हें शांत, स्थिर व प्रसन्न कर देते थे। इसी कारण उन्होंने श्रीपति को अपने दरबार में अपना सलाहकार बना रखा था। दरबार में रहने पर भी बहुत दिनों तक बादशाह को उनके कवित्व की शक्ति का पता ही न चला। एक दिन दरबारियों ने जब उनके कवित्व की प्रशंसा की तो मुगल बादशाह को ज्ञान हुआ कि भक्त श्रीपति एक महान कवि भी हैं। इस गुण का पता चलने पर अकबर ने उनसे कविता सुनाने का आग्रह किया। श्रीपति जी ने भी आध्यात्मिक भावों के कुछ पद सुना दिए।

उनकी सुनाई गई कविताओं से अकबर को जितना संतोष हुआ, दरबारियों को उतना ही असंतोष हुआ। इन दरबारियों में ज्यादातर लोग चाटुकार व चापलूस थे। उन्होंने सोचा था श्रीपति भी अन्य दरबारी कवियों की भाँति अकबर की प्रशंसा में कुछ कहेंगे। ऐसा कुछ भी न होने पर उन्हें गहरी निराशा हुई। इसलिए समय-समय पर वह भक्त श्रीपति की निंदा-चुगली करने लगे। हालाँकि बादशाह अकबर ने इन ओछी बातों पर कभी ध्यान नहीं दिया। श्रीपति जी भी भावमयी भवानी के सहारे हमेशा निडर व निश्चिंत रहते थे।

एक दिन दरबारियों ने भक्त श्रीपति को नीचा दिखाने के लिए एक युक्ति सोच निकाली। बादशाह अकबर का दरबार हो रहा था। उसी समय बादशाह के सामने भक्त श्रीपति को छोड़कर अन्य दरबारी कवियों एवं दरबारियों ने यह प्रस्ताव रखा कि अगले दिन सब कवि अपनी एक कविता सुनाएँ और इनमें से हरेक की कविता की अंतिम पंक्ति में यह वाक्य अवश्य रहे—'करौ मिलि आस अकबर की'। इस प्रस्ताव को सुनकर बादशाह मुस्करा दिए। उन्हें इस सबका आशय तो समझ में आ ही गया था, फिर भी उन्होंने हँसते हुए यह सोचकर हामी भरी कि चलो इस बहाने भक्त श्रीपति की बुद्धिमत्ता एवं भक्ति की परीक्षा भी हो जाएगी।

अगले दिन दरबार में भारी भीड़ हुई। सभी उत्साहपूर्वक अपनी-अपनी स्वरचित कविताएँ सुनाकर अकबर की प्रशंसा कर रहे थे। दरबार में सभी की दृष्टि श्रीपति पर टिकी थी। सभी सोच रहे थे कि आखिर यह क्या कहेंगे? इधर श्रीपति जी मन ही मन जगन्माता का स्मरण करते हुए पहले की ही भाँति निडर व निश्चिंत थे। उन्हें भरोसा था कि संकट की इस घड़ी में माता उनकी चेतना में प्रकट होकर अवश्य मार्ग दिखाएँगी। अंत में उनकी बारी भी आ गई। अपनी बारी आने पर वह आसन से उठे और माता का स्मरण करते हुए अपनी स्वरचित कविता पढ़ी—

अबके सुलतां फरियान समान हैं,
बाँधत पाग अटब्बर की,
तजि एक को दूसरे को जो भजे,
कटि जीभ गिरै वा लब्बर की।
सरनागत 'श्रीपति' माँ दुर्गा की,
नहिं त्रास है काहुहि जब्बर की,
जिनको माता सो कछु आस नहीं,
सो करौ मिलि आस अकब्बर की॥

इस कविता को सुनकर सभी षड्यंत्रकारियों के मुख पर कालिमा छा गई। बादशाह अकबर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने भक्त श्रीपति को यह कहते हुए गले लगा लिया कि—तुम्हारी भक्ति सच्ची है। सचमुच में जगन्माता तुम्हारे चित्त, चिंतन एवं चेतना में विराजती हैं।

इस मंत्र में निहित इन आध्यात्मिक-दार्शनिक भावों के साथ इसका अपना विशिष्ट साधना-विधान है, जो निम्न है—

॥ साधना-विधान ॥

विनियोगः-ॐ अस्य श्री 'तथापि तत्-समुत्पत्तिः' इति सप्तशती पञ्चषष्ठ मन्त्रस्य श्रीमेधसऋषिः, श्रीमहासरस्वतीदेवता, त्रूं बीजम्, मङ्गलाशक्तिः, श्रीमातङ्गीमहाविद्या, रजोगुणः, त्वक्ज्ञानेन्द्रियं, मृदुरसः, गुदकर्मेन्द्रियं, मध्यमस्वरं, वायुतत्त्वं, शान्तिकला, ॐ क्लीं उत्कीलनं, कूर्ममुद्रा, ममज्ञानभक्तिवैराग्यपूर्वकं, क्षेमस्थैर्यायुरारोग्याभिवृद्ध्यर्थं श्रीआदिशक्ति वेदमाता गायत्री रूपेण श्रीजगदम्बायोगमाया भगवतीदुर्गाप्रसादसिद्ध्यर्थं च नमोयुत प्रणव वाग्बीज, स्वबीज, लोम-विलोम पुटितोक्त पञ्चषष्ठ मन्त्र जपे विनियोगः।

॥ न्यासः ॥

	कर न्यासः	षडंग न्यासः
ॐ ऐं त्रूं	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
नमो नमः	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
तथापि तत्-समुत्पत्तिः	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
बहुधा श्रूयतां मम	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम्
देवानां कार्य-सिद्ध्यर्थं	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्रत्रयाय वौषट्
आविर्भवति सा यदा	करतल करपृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

॥ ध्यानम् ॥

शुक्लांब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीम्,
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्तेस्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थिताम्,
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्॥

॥ मन्त्र ॥

ॐ ऐं त्रूं नमः
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा॥
नमो त्रूं ऐं ॐ॥ ६४॥

१००० जपात् सिद्धिः—पायस ब्राह्मी होमः।

गायत्री महामन्त्र जप १०,०००-गायत्री विधानेन दशांश होमः।

१० माला गायत्री, १ माला सप्तशती मंत्र। इस तरह से १० दिन का विधान। तदुपरांत प्रत्येक का दशांश हवन।

आध्यात्मिक फलश्रुति—अंतश्चेतना में जगन्माता की कृपा का अवतरण।

लौकिक फलश्रुति—संकट के समय मार्गदर्शन।

गायत्री महामंत्र के साथ इस सप्तशती मंत्र की साधना साधक की चेतना पर त्वरित व तीव्र असर करती है। यदि साधना स्थिर, शांत व एकाग्र मन से की जाए, चेतना में नए वातायन खुलते हैं। मन स्वतः ही जगन्माता की कृपा को ग्रहण, धारण व स्वीकार के योग्य हो जाता है। माता भवानी की पराचेतना भी यहाँ अवतरित होने लगती है, जिसके प्रभाव से अंतर्मन में उच्चस्तरीय विचारों, भावों एवं प्रेरणाओं का उदय होता है। परिस्थितियों की जटिलता को सुलझाने के रास्ते खुलते हैं। संकटों के शमन का मार्ग प्रशस्त होता है। हाँ! इस साधना में साधक का संशय-संदेहरहित होना अनिवार्य है। साधना-प्रक्रिया जितनी अधिक श्रद्धा व भक्ति से सिंचित होगी, परिणाम उतने ही सुखद-सुखकारी होंगे।

ईरान का बादशाह नौशेखाँ एक दिन शिकार खेलते दूर निकल गया। दोपहर का समय हो जाने से गाँव में डेरा डालकर भोजन की व्यवस्था की गई। भोजन बनाने वालों को जब ज्ञात हुआ कि साथ लाए सामान में नमक नहीं है तो वे निकट के घर से थोड़ा-सा नमक ले आए। बादशाह ने उनसे पूछा—"नमक के दाम दे आए?" सेवक बोला—"बादशाह! थोड़े से नमक का क्या दाम देना?" नौशेखाँ तुरंत बोले—"जाओ! और तुरंत नमक के दाम देकर आओ। बदनीयती की शुरुआत ऐसी ही छोटी भूलों से होती है। यदि आज मैं छोटी-सी चीज बिना कीमत दिए लूँगा तो कल मेरे कर्मचारी मूल्यवान वस्तुएँ भी मुफ्त में लेना शुरू कर देंगे और राज्य में अराजकता फैल जाएगी।" अपने आचरण से सीख देने वाले ही दूसरों के लिए उदाहरण बनते हैं।

सकारात्मक सोचें, सार्थक बनें

विचारों में भी बहुत शक्ति होती है, हालाँकि कुछ लोग इस तथ्य से परिचित न होने के कारण बिना सोचे-समझे कुछ भी सोचते-विचारते रहते हैं। जिसका हमारे जीवन पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ता है। विचार एक प्रकार का आंतरिक संवाद होता है, जिसे हम अपने आप से करते हैं। विचार करते समय हम जिन भावों का चयन करते हैं, उनका हमारे जीवन पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ता है; क्योंकि व्यक्ति जैसा सोचता है, वैसा ही बन जाता है।

जिस तरह धनुष से तीर छोड़ा जाता है, उसी तरह मुख से निकले शब्दों के तीर भी वैसा ही प्रभाव डालते हैं। अशुभ भावनाओं से कहे गए शब्द अशुभ प्रभाव डालते हैं और ठीक वैसे ही अच्छी भावनाओं से कहे गए शब्द मनुष्य के जीवन को भी बदल कर रख देते हैं। हमारा जीवन चुनौतियों और संघर्षों से भरा हुआ है और अक्सर इन परिस्थितियों में हमें निराशा व हार का सामना करना पड़ जाता है, जिससे हम भावनात्मक रूप से कमजोर हो जाते हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हमारा चेतन मन एक समय में एक ही तरह के विचारों को पकड़ता है, ये विचार सकारात्मक या नकारात्मक हो सकते हैं और जिस तरह के विचार मन में लंबे समय तक बने रहते हैं, वैसे ही हम बन जाते हैं। इसलिए मनोवैज्ञानिक-निराशा के क्षणों में स्वयं से सकारात्मक संवाद करने पर जोर देते हैं; क्योंकि सकारात्मक संवाद के समय उपजे सकारात्मक शब्द मन में निराशा के कारण उपजे अँधेरे को दूर करके आशाओं के द्वार खोलते हैं।

सकारात्मक सोच, सकारात्मक संवाद, सकारात्मक कार्य आदि बहुत ही महत्त्वपूर्ण शब्द हैं, जिन्हें समझना बहुत आवश्यक है। कुछ लोग सकारात्मकता के वास्तविक अर्थ को नहीं समझ पाते, जिसके कारण इसका लाभ नहीं उठा पाते, कुछ आलसी व प्रमादी लोग सकारात्मकता को अकर्मण्यता का पर्याय समझते हैं और यह सोचकर ही संतुष्ट हो जाते हैं कि जो हो रहा है, वह अच्छा हो रहा है, वे न तो परिस्थिति को स्वीकारते हैं और न ही उससे निकलने का प्रयास करते हैं; जबकि सकारात्मकता का वास्तविक अर्थ चुनौतियों व प्रतिकूलताओं में भी आशा की किरण को खोज लेना है, जिसके सहारे वह उन जटिल परिस्थितियों से बाहर आ सके। किसी जटिल से जटिल समस्या से न घबराकर उसे व्यावहारिक स्तर पर समाधान कर देने का नाम ही सकारात्मकता है।

कुछ ऐसे तरीके हैं, जिनके माध्यम से हम स्वयं से सकारात्मक संवाद कर अपने जीवन को उन्नत बना सकते हैं। पहला तरीका यह है कि हम यह कहें कि 'हम जैसे भी हैं, स्वयं को हारने नहीं देंगे और किसी भी घटना पर रचनात्मक तरीके से अपनी प्रतिक्रिया देंगे'। इसके लिए गहरी श्वास लें, विश्राम करें और यह सोचकर देखें कि इस पूरी प्रक्रिया में क्या अच्छा छिपा हो सकता है और इसके लिए स्वयं को मानसिक रूप से तैयार कर लें। जब किसी विषय में अच्छा सोचा जाता है तो इस दिशा में प्रयास करने में कुछ न कुछ अच्छी बातें मन में आ जाती हैं। जो हमें इस दिशा में कार्य करने के लिए मानसिक बल प्रदान करती हैं, लेकिन किसी विषय में गलत सोचने के लिए ज्यादा प्रयास नहीं करना पड़ता, थोड़े ही प्रयास से किसी भी विषय के नकारात्मक पहलू उभरने लगते हैं, इसका कारण यह है कि हमारा माहौल व वातावरण नकारात्मक तत्त्वों से भरा हुआ है और हमने भी वैसा ही सोचने का अभ्यास कर लिया है। इसलिए सकारात्मक सोचने का प्रयास व अभ्यास करना चाहिए; क्योंकि सकारात्मक विचार व शब्द ही हमें सही दिशा में ले जा सकते हैं।

दूसरा तरीका यह है कि हर समय हम स्वयं से सकारात्मक बातें करते हुए किसी नकारात्मक विचार को तटस्थता के साथ ग्रहण करें। जैसे ऐसा कहें कि 'मैं खुश हूँ'; 'मैं स्वस्थ हूँ'; 'मैं ऊर्जा से भरपूर हूँ।' कभी कहें कि 'आज का दिन अच्छा है', 'मैं स्वयं को पसंद करता हूँ/करती हूँ'; 'मुझे अपना काम अच्छा लगता है।' और ऐसा कहते या सोचते समय मन में जो भी नकारात्मक विचार आएँ, उन्हें केवल देखें, अपनाएँ नहीं, केवल उन

तत्त्वों से गुजर जाएँ। जिस तरह हमारे रास्ते में फूल, पत्थर, काँटे सभी पड़े होते हैं, लेकिन हम जान-बूझकर पत्थर व काँटों पर पैर नहीं रखते, उनसे बचकर, सँभलकर निकल जाते हैं, उसी प्रकार हमें नकारात्मक तत्त्वों से बचकर निकल जाना चाहिए और फूलों के सदृश सकारात्मक विचारों व शब्दों को अपनाना चाहिए; क्योंकि जिन्हें भी हम अपनाते या स्वीकार करते हैं, वे हमारे अवचेतन मन में गहराई से उतरकर हमारे व्यक्तित्व का स्थायी हिस्सा बन जाते हैं।

तीसरा तरीका यह है कि जीवन में मिलने वाली चुनौतियों को सदैव अस्थायी, वस्तुनिष्ठ और बाहरी कारक के रूप में स्वीकारें। किसी भी समस्या को एक अकेली घटना के रूप में देखें। अक्सर हम इन समस्याओं से जूझते हुए, इन पर अत्यधिक सोचते हुए इन्हें अन्य दूसरी घटनाओं से जोड़ने लगते हैं, जिसके कारण हम समस्याओं पर पूरी तरह से केंद्रित नहीं हो पाते और हमारी समस्याएँ भी अन्य तत्त्वों से जुड़ने के कारण विकराल रूप लेने लगती हैं और फिर इनका समाधान करना सरल नहीं होता। हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि जीवन की हर समस्या पर हमारा एक साथ नियंत्रण नहीं हो सकता। इसलिए एक समय में एक ही तरह की समस्या पर विचार करना चाहिए और समस्या का समाधान करते समय उससे जुड़े हुए अन्य पक्षों का भी ध्यान रखना चाहिए।

चौथा तरीका यह है कि हम यह सोच रखें कि विपत्तियों और चुनौतियों का सामना करके ही सफलता हासिल की जा सकती है, इसलिए इन जटिल परिस्थितियों से घबराएँ नहीं और इनका दृढ़ता के साथ सामना करें। एक अच्छे और मजबूत व्यक्तित्व के लिए इन चुनौतियों से ऊपर उठना जरूरी होता है। चुनौतियों का सामना करके ही हमारा व्यक्तित्व व जीवन निखरता है, अनुभव व आत्मविश्वास बढ़ता है, इसलिए यह कभी न सोचें कि चुनौतियाँ हमारे मार्ग की रुकावट हैं, बल्कि यह सोचें कि ये एक पड़ाव हैं, जिन्हें हमें पार करना है और आगे बढ़ना है। ऐसा करने पर ही एक स्थिति ऐसी आएगी कि ये चुनौतियाँ हमारे लिए खेल के सदृश मनोरंजक व रोचक बन जाएँगी, फिर इनका सामना करने में भय नहीं लगेगा, बल्कि उत्साह जगेगा; क्योंकि हर चुनौती का सामना होने पर हम और मजबूत बनते जाते हैं।

पाँचवाँ तरीका यह है कि हम अपने सपनों व लक्ष्यों पर लगातार सोचते रहें; क्योंकि ऐसा करने से हमें अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए पर्याप्त खाद-पानी व पोषण मिलता है। जब हम किसी चीज के बारे में गहराई से सोचते हैं तो उससे संबंधित नए विचार व नए तरीके उभरकर आते हैं और हमारे स्वप्न व लक्ष्य को एक सुनिश्चित आकार मिलता है और हम सही दिशा में आगे बढ़ते हैं। इसलिए यदि जीवन की भटकन से उबरना है और अपने इच्छित लक्ष्य तक पहुँचना है तो मन में उठने वाले नकारात्मक तत्त्वों को हटाना होगा और अपने अंदर की सकारात्मक रचनात्मकता को उभारना होगा।

इसके अतिरिक्त अन्य भी कई तरीके हैं, जिनके माध्यम से हम स्वयं से सकारात्मक रूप से जुड़ सकते हैं और अपने जीवन को सँवार सकते हैं। बस, केवल हमें उन तरीकों के बारे में सोचकर उन्हें अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाना होगा, तभी हमारे जीवन में सार्थक परिवर्तन संभव हो सकेगा।

कौरवों और पांडवों की सेनाएँ आमने-सामने आ गईं। शंख बजने लगे। कुरुक्षेत्र में युद्ध की पूरी तैयारी हो चुकी थी। ठीक तभी एक टिटिहरी का आर्तनाद गूँजा। दोनों शिविरों के मध्य एक खोह में उसका घोंसला था। उसे स्वजीवन की तो चिंता नहीं थी, परंतु अपने बच्चों की थी। उसकी निस्सहाय पुकार सारे वातावरण में बिखर गई थी। श्रीकृष्ण के कानों तक यह पुकार पहुँची, वे दौड़ पड़े। एक पत्थर उठाकर घोंसले के द्वार पर रख दिया और वापस आकर सेनापति से कहा—"अब तुम युद्ध का बिगुल बजा सकते हो।" महापुरुष विषम परिस्थितियों में भी मानवता का साथ नहीं छोड़ते।

►समूह साधना वर्ष◄

मानव शरीर की विद्युतीय क्षमता

मानवीय काया की क्षमता एवं प्रभाव अद्भुत एवं आश्चर्यजनक हैं। सामान्य-सी दीखने वाली इस काया में हैरतअंगेज एवं चमत्कारी प्रभाव परिलक्षित होते हैं। कुछ इनसानों के शरीर में इतनी अधिक विद्युत होती है कि उन्हें 'विद्युत मानव' की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। विद्युत मानव कहे जाने वाले इन इनसानों के शरीर में अत्यधिक मात्रा में विद्युत होती है जो अपने संपर्क में आने वाले पदार्थों को प्रभावित करती है जैसे लोहे को छूने से उसमें करेन्ट दौड़ जाता है और लकड़ी को छूने से उसमें आग लग जाती है।

किसी व्यक्ति के शरीर में इतनी विद्युतीय शक्ति संचित हो कि उसके छूने भर से बिजली का बल्ब जगमगा उठे—यह बात भले ही अटपटी लगती हो, पर है सच। यह सच मास्को निवासी लैरिन कैप के साथ घटित हुआ है। उसके शरीर में इतनी अधिक विद्युतीय क्षमता है कि पंखे का तार उससे छू भर जाए तो पंखा स्वत: चलने लगता है। यदि कैप माइक्रोवेव के तार को हाथ भर लगा दे तो वह चलने लगता है। वह किसी कागज या रबर को इसलिए नहीं छूता; क्योंकि उसके छूने से वे जल उठते हैं। कैप के शरीर में प्रवाहित विद्युत के साथ अद्भुत बात यह है कि वह अपने अंदर की विद्युतीय शक्ति को इच्छानुसार चालू या बंद कर सकता है, अर्थात ये सारे करतब उसकी इच्छा से होते हैं।

इसी तरह इंग्लैंड के लंदन शहर में रहने वाली महिला पॉलिन शॉ को चलता-फिरता बिजलीघर कहा जाता था। उसके शरीर से दो सौ वोल्ट का विद्युत प्रवाहित होता था। उसकी विशेषता थी कि वह यदि किसी बल्ब के नीचे से भी निकल जाए तो वह अपने आप ही जल उठता था। यह महिला विवाहित थी तथा इसकी तीन संतानें भी थीं। इसमें विद्युतीय क्षमता इतनी जबरदस्त थी कि जब भी वह किसी चीज को छूती तो उसमें से बिजली की चिनगारी निकलती और धमाके की आवाज-सी होती। पॉलिन ने एक बार पानी से भरा एक्वेरियम छू लिया था। इससे उसके हाथ से इतना करेंट निकलकर एक्वेरियम में पहुँचा कि सारी मछलियाँ वहीं मर गईं। उसकी इसी विद्युतीय क्षमता के कारण उससे हाथ मिलाना भी एक चुनौती थी; क्योंकि हाथ मिलाने वाले को जबरदस्त झटका लगता था और वह दूर जा गिरता था।

इंग्लैंड के ही लेंकाशायर शहर की निवासी सेली वॉलबैक भी ऐसी ही अद्भुत क्षमता से संपन्न थी। अपनी इसी विद्युतीय क्षमता के कारण उसने न केवल अपने घर में चलने वाले सभी विद्युतीय उपकरणों को हाई वोल्टेज के कारण खराब कर दिया था, बल्कि उसने अपने बैंक के इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड्स को भी विद्युत-प्रवाह से नष्ट कर दिया था। उसकी यह क्षमता उसके भावुक होने पर निर्भर करती थी एवं भावुक क्षणों में उससे यह विद्युतीय प्रवाह और तेजी से होने लगता था, पर रोचक बात यह है कि उसके शरीर पर ठंढा पानी डालने से यह प्रवाह शांत भी हो जाता था।

विद्युतीय क्षमता का ऐसा चमत्कार सर्बिया देश के निवासी स्लैविसा पैजकिक नामक व्यक्ति में भी देखा गया था। वह अपने शरीर में से अत्यधिक विद्युत को संचारित कर लेता था, परंतु इस दौरान उसका शरीर सामान्य ही रहता था। उसकी शारीरिक प्रतिरोधक क्षमता भारी मात्रा की विद्युत को भी आसानी से झेल लेती थी। उसके द्वारा बल्ब को छूते ही बल्ब जल उठता था तथा इसी तरह वह विद्युत उपकरणों को भी जब चाहे तब चार्ज करने की क्षमता रखता था।

दक्षिण भारत का राजमोहन नायर भी एक ऐसा ही विद्युत मानव है। उसका शरीर सामान्य व्यक्ति के शरीर से दस गुना अधिक विद्युत प्रतिरोधी है। सामान्य व्यक्ति का शरीर जिस बिजली के झटके को सह नहीं पाता, उसी झटके को राजमोहन नायर का शरीर आसानी से झेल जाता है। नायर को अपनी इस क्षमता का परिचय तब हुआ, जब वह अपनी माँ की मृत्यु का समाचार पाकर अत्यंत व्यथित हो उठा। वह इतना अधिक परेशान हो गया था कि उसने मरने की ठान ली। आत्महत्या के उद्देश्य से नायर अपने नजदीक के ट्रांसफार्मर पर चढ़

गया और उससे निकलने वाले तार पर लटक गया। पर जब उसे उस विद्युत-प्रवाह का कोई असर नहीं हुआ तो उसे महसूस हुआ कि संभवतया उसमें कोई विशेष क्षमता है। जब उसने अपनी इस क्षमता का प्रयोग घर के विद्युत उपकरणों पर किया तो उसे ज्ञात हुआ कि उसमें यह अद्‌भुत विद्युत प्रतिरोधी शक्ति है।

ऐसी ही एक क्षमता चीन देश के नागरिक कान जिआंग वांग के अंदर भी है, जो न केवल विद्युत को प्रवाहित कर सकता है, वरन विद्युत के प्रवाह को झेल भी सकता है। संभवतया दोनों शक्तियाँ एक साथ रखने वाला वह अकेला मानव है। पर ऐसा आवश्यक नहीं है कि यह क्षमता मात्र कुछ मनुष्यों के अंदर चमत्कारिक ढंग से प्रकट हो गई हो। विश्व इतिहास में अलग-अलग समय पर कुछ जादूगरों द्वारा भी ऐसे हैरतअंगेज कारनामों को जन्म दिया गया है।

ऐसा ही एक कारनामा अमेरिका के विख्यात जादूगर डेविड ब्लेन ने अक्टूबर, २०१२ में कर दिखाया। उनने एक लाख वोल्ट का करेंट प्रवाहित करने वाले २० फीट ऊँचे प्लेटफार्म पर ७२ घंटे खड़े होकर गुजारे। यह चमत्कृत कर देने वाला प्रदर्शन हडसन नदी के किनारे पियर-५४ पर हुआ। वे इस प्लेटफार्म पर तीन दिन और तीन रात बिना कुछ खाए खड़े रहे। उनकी प्यास बुझाने के लिए एक वाटर पाइप उनके मुँह से जोड़ा गया था। यह करतब रिकार्ड हुआ था, जो 'इलेक्ट्रिफाइड-वन मिलियन वोल्टेज आल्वेज ऑन' नाम से जाना जाता है।

मानव शरीर ऐसी ही अद्‌भुत क्षमताओं से परिपूर्ण है। आवश्यकता है कि उन क्षमताओं का परिचय मिले, ताकि उनका सदुपयोग एवं नियोजन किया जा सके। अन्यथा इन क्षमताओं का चमत्कारी प्रदर्शन बाजीगरी के समान रह जाएगा। इस बाजीगरी से लोगों में आकर्षण जरूर पैदा किया जा सकता है, लेकिन इससे इन विद्युत मानवों का सार्थक सदुपयोग संभव नहीं हो सकेगा। इन क्षमताओं का उपयोग जनकल्याण में हो, यही श्रेयस्कर है। ❀

सुंदरवन में कुटिलराज नामक एक गीदड़ रहा करता था। नाम के अनुसार, वह अपनी कुटिलता के लिए कुख्यात था। एक दिन वह शिकारियों द्वारा खोदे गए गड्ढे में गिर गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी वह बाहर न निकल सका। थक-हारकर वह वहीं बैठ गया था कि उसे एक बकरी की आवाज सुनाई पड़ी, जिसे सुनते ही उसने तत्काल एक योजना बनाई। वह बकरी को पुकारकर बोला—"बहन! जरा देखो, यहाँ कितनी हरी-हरी घास और मीठा पानी है। यहाँ आओ! और इस हरियाली का जी भर कर लाभ उठाओ।"

कुटिलराज गीदड़ की बातें सुनकर वह सीधी बकरी गड्ढे में कूद गई। उसके कूदते ही वह गीदड़ उसकी पीठ पर चढ़कर बाहर कूद गया और फिर बकरी को संबोधित करते हुए बोला—"तुम तो मूर्ख की मूर्ख ही ठहरीं। खुद ही गड्ढे में मरने आ गईं।" बकरी उसी निश्चितता के साथ बोली—"भाई गीदड़! मैं तो परोपकार करते हुए मर जाने को ही धर्म समझती हूँ। शिकारियों के लिए तो मैं किसी काम की नहीं, मुझे तो वे शायद वैसे ही निकाल लें, परंतु इस संवेदनहीनता के साथ तुम किसको अपना बना पाओगे, ये तुम्हें जरूर सोचना चाहिए।" बकरी की बातें गीदड़ के हृदय में चुभ गईं और उसने अपने जीवन की दिशा बदल ली।

अधर्म पर धर्म की विजय

समय गोधूलि वेला का था। वातावरण में नीरवता व्याप्त थी। मंद-मंद बयार बह रही थी और आस-पास के पेड़ों के झुरमुटों से पक्षियों की चहचहाहट की आती आवाजें वातावरण की नीरवता को और सघन कर रही थीं। महर्षि आश्वलायन अपने आश्रम के परिसर में प्रवेश द्वार के पास बनी बैठक पर विराजमान थे। उनके समीप उनके शिष्यों का एक समूह उसी गंभीरता के साथ खड़ा था, जो महर्षि के मुखमंडल को घेरे हुई थी।

विदर्भ राज्य में संभव ही ऐसा कोई व्यक्ति था, जिसे महर्षि का नाम न पता हो। तेजस्वी व्यक्तित्व के धनी, तपस्या की प्रतिमूर्ति, ज्ञान की पराकाष्ठा एवं अध्यात्म के शिखर महर्षि आश्वलायन जीवन के समस्त आयामों पर एकांगी अधिकार रखते थे। राजपरिवार से लेकर राजदरबार तक, राजाओं के पुत्रों से लेकर मंत्रियों की संतानों तक लगभग सभी ने उन्हीं के गुरुकुल से शिक्षा प्राप्त की थी। जीवन के मूलभूत सिद्धांतों से लेकर अध्यात्म की गहन विद्याओं तक शिक्षण दे पाने का विलक्षण गुण महर्षि आश्वलायन के पास था।

आज वातावरण में फैली गंभीरता किसी विशेष कारण से थी। महर्षि आश्वलायन के विषय में विख्यात था कि उनके द्वारा शिक्षा प्राप्त शिष्य, चाहे राजदरबार की सीढ़ियाँ न भी चढ़े, परंतु जीवन में उत्कर्ष को जरूर प्राप्त करता है। इसी गौरव का परिणाम था कि बड़े-बड़े राजा-महाराजा उनके गुरुकुल के बाहर कतारबद्ध खड़े होते थे, ताकि अपनी संतानों को संस्कृति और संस्कार से परिचित करा सकें। गुरुकुल के कण-कण में स्वाभिमान की वही मीठी गंध विद्यमान थी।

परंतु आज महर्षि आश्वलायन के मस्तक पर चिंता की रेखाएँ साफ देखी जा सकती थीं। सामने खड़े शिष्य समूह में से किसी ने भी उनको आज तक इतनी गंभीर सोच में व्याप्त नहीं देखा था। महर्षि के चिंतन का कारण भी गंभीर था। उनका एक पूर्व शिष्य जो निकटवर्ती राज्य का सेनापति था, वह उनके समक्ष एक अभूतपूर्व समस्या लेकर के आया था।

सेनापति पुष्यमित्र महर्षि से यह बताने आया था कि उसके राज्य में जिस दस्यु ने समस्त राज्य को भयाक्रांत कर रखा था, वह और कोई नहीं, वरन महर्षि का ही पूर्व शिष्य देवदत्त था। ऐसा आज तक नहीं हुआ था कि महर्षि के किसी शिष्य ने पतन के मार्ग का चयन किया हो। उनके गुरुकुल की दीवारें तो उनके शिष्यों के संस्कारों की गाथाओं से महिमामंडित थीं। उत्कर्ष, उत्थान, उन्नति और अभ्युदय—उनके शिष्यों के संदर्भ में ऐसी कथाएँ तो दिन-रात सुनने को मिलती थीं, किंतु महर्षि की स्मृति में यह पहली बार था कि उनके किसी शिष्य के दस्यु बनने का समाचार उन्हें मिला हो।

महर्षि को शांत एवं गंभीर मुद्रा धारण किए हुए घड़ियाँ बीत गईं, तब मंद स्वर में महर्षि बोले—"क्या तुम्हारी देवदत्त से भेंट हुई है पुष्यमित्र?" पुष्यमित्र में इतना साहस न था कि वह महर्षि को प्रत्युत्तर देता, पर उसके हामी भरते सिर ने महर्षि को उनका उत्तर प्रदान कर दिया। थोड़ा रुककर महर्षि ने पुष्यमित्र से पूछा—"क्या वह गुरुकुल को याद करता है?" इस बार पुष्यमित्र धीरे से बोला—"उसने मुझसे ऐसा कहा तो नहीं गुरुदेव! पर गुरुकुल को भूल कौन सकता है।"

महर्षि के मुख पर ऐसी भंगिमा बनी कि जिससे लगा कि उन्हें समस्या का समाधान मिल गया हो। वे त्वरित गति से अपने स्थान पर खड़े हुए और पुष्यमित्र को संबोधित करते हुए बोले—"देर न करो पुष्यमित्र! और मुझे देवदत्त के पास ले चलो।" महर्षि का संकल्प सुनकर पुष्यमित्र ठिठका और बोला—"गुरुवर! मेरी समझ में उसके पास जाना उचित न होगा। ऐसा लगता है कि जैसे वह गुरुकुल की सारी शिक्षाओं को भूल चुका है। विगत वर्ष वह सैकड़ों निरपराधों को मृत्यु के द्वार पहुँचा चुका है और मुझे तो ऐसा लगता है कि जैसे उसे अपने इस अपराध का बोध ही नहीं। ग्लानि की भावना तो उसके अंतर्मन से जैसे तिरोहित हो गई है। यदि दुर्भाग्य से उसने आपको कोई क्षति पहुँचा दी तो मैं स्वयं को कभी क्षमा न कर सकूँगा।" पुष्यमित्र के शब्दों में क्षोभ था।

महर्षि ने पुष्यमित्र की ओर आश्वासन भरी दृष्टि से देखा और फिर उसके कंधे पर अपना हाथ रखते हुए बोले—"वत्स! गुरु का दायित्व ही अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाना होता है। यदि आज मैं अपने दायित्व से विमुख हो जाऊँगा तो आने वाली पीढ़ी को किस आधार पर सत्याचरण और धर्माचरण की शिक्षा दे पाऊँगा। प्रश्न मात्र देवदत्त और आश्वलायन का नहीं, प्रश्न सत्य और धर्म के अस्तित्व का है। यदि मेरी दी गई शिक्षाओं में, मेरे आचरण में, मेरे व्यक्तित्व में सत्य एवं धर्म का समावेश है तो मैं और तुम, देवदत्त के पास से निष्कंटक लौटेंगे और यदि मेरी दी गई शिक्षाएँ दुराचरण पर आधारित हैं तो हमारा नष्ट हो जाना ही श्रेष्ठ है।"

इन शब्दों के प्रतिकार की सामर्थ्य पुष्यमित्र में न थी। वह महर्षि को लेकर देवदत्त के डेरे की तरफ चल पड़ा। यात्रा लंबी थी और दुश्वार भी। देवदत्त जो अब दस्यु सम्राट के नाम से जाना जाता था, वह अपने जैसी अन्य कई क्रूर आत्माओं को साथ लेकर घनघोर जंगल में रहा करता था और आते-जाते राहगीरों को लूटकर उनके धन से गुजर-बसर करता था। अपना धन देने वाले और न देने वाले, दोनों ही देवदत्त के हाथों मारे जाते। उसे जैसे निरपराधों की हत्या में सुख मिलने लगा था। उसका नाम सुनते ही लोगों के मन में भय व्याप्त हो जाता था।

चलते-चलते महर्षि एवं सेनापति पुष्यमित्र देवदत्त के ठिकाने पर पहुँचे। सेनापति पुष्यमित्र एक बार देवदत्त को समझाने यहाँ आ चुका था। उसकी सोच थी कि गुरुभाई होने के नाते संभवतया देवदत्त उसकी सुनकर अपना जीवन-मार्ग बदल डाले, परंतु देवदत्त तो उसे ही मारने के लिए तत्पर हो गया। अन्य डाकू साथियों के ये समझाने पर कि सेनापति को मारने पर व्यर्थ ही राजदंड का सामना करना पड़ेगा, देवदत्त ने उसे जाने दिया, परंतु उसे जीवित छोड़ने के पीछे उसके मन में करुणा का भाव न था। इसी कारण पुष्यमित्र महर्षि को वहाँ ले जाने के पक्ष में न था, परंतु उनके संकल्पित वचनों को सुन कर उससे उनका प्रतिरोध न करा गया।

महर्षि आश्वलायन दस्यु देवदत्त के समक्ष खड़े थे। देवदत्त के हाथों में रक्तरंजित तलवार थी और उसके आस-पास दुर्दांत दस्युओं का समूह खड़ा था। वर्षों से इस पथ पर चलने के कारण देवदत्त को ऐसे व्यक्तित्व से मिलने की आदत जैसे छूट गई थी, जिसे उससे भय न लगता हो। विषाक्त वातावरण में पतन के पथ पर चलने के कारण वह जैसे महर्षि को भूल ही गया था। महर्षि को सामने देखकर भी उसने उन्हें पहचाना नहीं, वरन वह आश्चर्यचकित हुआ कि यह कौन व्यक्ति है, जो इतनी निर्भीकता के साथ उसके समक्ष खड़ा है।

स्तब्ध वातावरण को महर्षि के ही शब्दों ने पहले भंग किया। प्रेम से स्निग्ध स्वरों के साथ महर्षि बोले—"कैसे हो पुत्र देवदत्त! क्या घर की याद नहीं आती?" इतने वर्षों में इतने प्रेम के साथ देवदत्त को पहली बार किसी ने पुकारा था। उनके शब्दों का प्रेम था अथवा उनकी तपस्या की तीक्ष्णता, देवदत्त के हाथ तलवार सहित काँपने लगे। आदतवश उसने तलवार उठाने का प्रयत्न तो किया, परंतु हाथ ऊपर उठने के स्थान पर शिथिल पड़ गए। उसकी आँखें महर्षि आश्वलायन से मिलीं तो उनसे क्रूरता की जगह कोमलता की अश्रुधार बह निकली। वह कुछ समझ पाता, इससे पूर्व वह महर्षि के चरणों में गिरा पड़ा था।

प्रेम से उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए महर्षि बोले—"पुत्र देवदत्त! मेरी दी गई शिक्षा में क्या कमी रह गई थी, जो आज हमारी-तुम्हारी भेंट इस मोड़ पर हुई है। जो हाथ धर्म की रक्षा के लिए खड़े हुआ करते थे, वे निर्दोषों के रक्त से रँगे हैं! जीवन तुम्हें यहाँ कैसे ले आया पुत्र!" देवदत्त ने उत्तर दिया—"गुरुदेव! कमी आपकी शिक्षा में नहीं, मेरी पात्रता में थी। मेरे पिता राज्य के मंत्री अवश्य थे, परंतु उनकी प्रवृत्ति दूषित थी। गुरुकुल से लौटने के उपरांत मैंने प्राप्त शिक्षाओं के अनुसरण का भरसक प्रयत्न किया, परंतु परिवार में संव्याप्त कलुषित चिंतन ने मुझे इस पथ पर ला पटका। धीरे-धीरे तो मैं जैसे गुरुकुल को भूल ही गया, परंतु आज आपके प्रेम ने मुझे वो सभी शिक्षाएँ पुनः याद दिला डालीं। मुझे क्षमा करें गुरुवर! मुझसे भयंकर भूल हुई है।"

महर्षि बोले—"पुत्र! उत्थान और पतन तो जीवन की स्वाभाविक दिशाएँ हैं। भूल तो मनुष्य से होती ही है, परंतु सच्चा गौरव उनका सही प्रायश्चित करने में है, मात्र उन पर ग्लानि करने में नहीं। यदि तुम क्षमा चाहते हो तो उन निर्दोषों के घरों को पुनः नवजीवन दो, जो तुमने अज्ञानवश नष्ट किए हैं। हर उस पीड़ित व्यक्ति से निकलते क्षमा के स्वर तुम्हारे जीवन को स्वतः ही सुगंध से भर देंगे।" देवदत्त को महर्षि का कथन समझ आ चुका था। धर्म ने अधर्म को प्रेम से पराजित कर दिया था।

कैसे लाएँ जीवन में खुशी

आमतौर पर लोग नहीं जानते कि खुशी क्या है? ढेर सारे पैसे, ऐशोआराम होते हुए भी आज लोग खुश नहीं हैं; जबकि कुछ लोग ऐसे भी हैं, जिनके पास ज्यादा कुछ नहीं होता, फिर भी वे खुश रहते हैं। सचाई तो यह है कि खुशी कहीं नहीं, बल्कि हमारे अंदर हर समय मौजूद रहती है, जिसे हम देख नहीं सकते, पर महसूस कर सकते हैं।

वैज्ञानिकों का दावा है कि उन्होंने खुशी के उस रहस्य को सुलझा लिया है, जो हमेशा से मनुष्य को परेशान करता आ रहा था। यह रहस्य जटिल नहीं, बल्कि बहुत सरल है। लोग यह समझते हैं कि खुशी का मतलब है—सच्चा प्यार, ढेर सारी दौलत या फिर बढ़िया-सी नौकरी। लेकिन वैज्ञानिकों के अनुसार—खुशी का एक फार्म्यूला (सूत्र) है—पीईएच।

इसमें **'पी'** का मतलब है—पर्सनल कैरेक्टरस्टिक अर्थात इनसान के व्यक्तिगत लक्षण, जिनमें शामिल हैं—इनसान का जीवन के प्रति रवैया और विभिन्न परिस्थितियों में स्वयं को संतुलित रखने की क्षमता। **'ई'** का मतलब है—एक्जिस्टेंस यानी अस्तित्व, जो हमारी सेहत, आर्थिक स्थिति और हमारे मित्रों-संबंधियों से जुड़ा हुआ है। **'एच'** का मतलब है—हायर ऑर्डर नीड्स अर्थात आत्मसम्मान, दूसरों के लिए स्वयं की आवश्यकताओं का उत्सर्ग करने की आकांक्षा इत्यादि। इस तरह तीन अक्षरों से मिलकर बना यह खुशी का फार्म्यूला है, जिसे मनोवैज्ञानिकों ने शोध के उपरांत तैयार किया है।

एक मनोवैज्ञानिक पीट कोहेन के अनुसार—ज्यादातर लोग यह नहीं जानते कि खुशी क्या है? वे समझते हैं कि खुशी मिलती है, बहुत सारे पैसे से, बड़े से घर या बढ़िया मकान से, लेकिन वास्तव में सच यह है कि कई लोग सब कुछ होते हुए भी खुश नहीं हैं; जबकि बहुत से लोग इस सबके बिना भी खुश हैं और जिंदगी का सुख उठाते हैं।

कोहेन के अनुसार—वे लोग दुखी रहने में सबसे आगे हैं, जो नकारात्मक चीजों पर ज्यादा ध्यान देते हैं, जैसे—जीवन में क्या-क्या गलत है या उन्हें क्या नहीं मिल पाया है। इसके विपरीत वे लोग कम से कम में भी सुखी हैं, जिन्हें जो कुछ भी मिला है, वे उसी से संतुष्ट हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, नकारात्मक तत्त्व हमारे जीवन में दुःख, असंतोष व अशांति का संचार करते हैं, जबकि सकारात्मक तत्त्व हमें आंतरिक खुशी, संतोष व शांति देते हैं।

खुशी बाजार में मिलने वाली कोई वस्तु नहीं है, जिसे पैसे देकर खरीदा जा सके। इसका कोई आकार नहीं होता और न ही इसे चुराया जा सकता है। खुशी छोटी या बड़ी नहीं होती और न ही ये बड़ी चीजों को हासिल करने से बनी रहती है। यह तो जिंदगी की छोटी-छोटी चीजों से हमें मिलती रहती है, बस, हमें उन्हें देखने, समझने का तरीका नहीं आता।

'ए न्यू अर्थ' के लेखक एकहार्ट का कहना है कि जिन्हें जीवन की बड़ी खुशी समझा जाता है, जैसे—नई कार खरीदना, अच्छी नौकरी हासिल करना, पगार बढ़ना आदि। एक तो ये जीवन में बहुत कम आती हैं और दूसरा इन्हें महत्त्व देकर हम स्वयं को भुला देते हैं और स्वयं से दूर जाते हैं; जबकि जीवन में आने वाली छोटी-छोटी खुशियाँ ही जीवन का आधार होती हैं और जीवन में रोजाना भारी मात्रा में आती हैं, लेकिन हम अपने नकारात्मक दृष्टिकोण के कारण उन्हें देख नहीं पाते और न ही पर्याप्त महत्त्व देते हैं।

सच तो यह है कि जीवन में बड़ी उपलब्धि व बड़ी खुशी पाने के लिए हम इन ढेर सारी छोटी-छोटी खुशियों की निरर्थक बलि देते रहते हैं और इस तरह न तो हम वर्तमान में खुश रह पाते हैं और न ही भविष्य को सुखद कर पाते हैं। इसका कारण यह भी है कि निरंतर के नकारात्मक चिंतन से और इस सोच से कि जो हमें मिला है, वह कम है—हमारा स्वभाव ही कुछ इस तरह का बन जाता है कि हम जाने-अनजाने मिलने वाली इन खुशियों की परवाह ही नहीं करते और सदा दुखी रहने को अपना स्वभाव बना लेते हैं।

खुशी तो देने की चीज है, जिसे जितना बाँटो, वह उतना ही बढ़ती है। यह जितना चाहो, उतनी मिल सकती है, बस, हमें केवल इसे देखने व समझने का नजरिया बदलने की आवश्यकता है। प्रश्न यह उठता है कि इस दृष्टिकोण को कैसे बदला जाए। कुछ ऐसे सरल व आसान उपाय हैं, जिन्हें अपनाकर हम न केवल अपने नकारात्मक दृष्टिकोण बदल सकते हैं, बल्कि स्वयं को सदा खुश भी रख सकते हैं।

ऐसा ही एक उपाय है कि हम सदा स्वयं से प्रेम करें। जब हम स्वयं को चाहते हैं, पसंद करते हैं, तब ही दूसरों से प्रेम कर पाने में और उन्हें आत्मीयता दे पाने में समर्थ हो पाते हैं। जो स्वयं से असंतुष्ट होते हैं और सदा अपने व्यक्तित्व में कमियाँ देखते रहते हैं, उनके आत्मविश्वास में कमी बनी रहती है और वे दूसरों का भी प्रोत्साहन नहीं कर पाते। उनकी अपनी असुरक्षा उन्हें दूसरों को भी संरक्षण और सुरक्षा देने में नाकामयाब रहती है।

इस कमी को दूर करने का एक अच्छा उपाय यह है कि हम नियमित अपनी डायरी में कम से कम एक सत्य सकारात्मक घटना अपने विषय में लिखें। ऐसा करने के लिए हमें अपनी खामियों को न देखकर अपनी खूबियों पर ध्यान केंद्रित करना होगा तथा सत्य लिखने की आदत हमें ऐसा कर्म करने के लिए प्रेरित भी करेगी। धीरे-धीरे सकारात्मक घटनाक्रमों से हमारी डायरी भी भरेगी और हमारे जीवन में भी सद्गुणों का समावेश होता चलेगा।

परमात्मा ने हर मनुष्य को कोई न कोई खास गुण दिया है, जिसे हम पहचाने, खोजें और निखारने का प्रयास करें। हर व्यक्ति अपने आप में विलक्षण व खास है और परमात्मा ने उसके जैसा दुनिया में किसी और को नहीं बनाया है। इसलिए यदि हम यही दृष्टिकोण रख कर अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं पर ध्यान देते हुए उनको विकसित करने का प्रयास करें तो शनैः-शनैः व्यक्तित्व ऐसी अनगिनत विशेषताओं से परिपूर्ण हो जाता है और हम अपनी एक विशेष पहचान बना पाने में भी सफल हो जाते हैं। अपनी विशेषताओं पर ध्यान देने का अर्थ दूसरों के व्यक्तित्व में कमियाँ निकालना या दूसरों से अपनी तुलना करना नहीं है। इसका अर्थ मात्र अपने जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाना और उसे उसी अनुरूप विकसित करना है।

सकारात्मक दृष्टिकोण रखने का एक उपाय यह भी है कि जिन कार्यों को अतीत में नहीं किया जा सका, उन्हें हम वर्तमान में करने का प्रयास करें और इस तरह प्राप्त उपलब्धियों से हमारे आत्मविश्वास में जो बढ़ोत्तरी होगी, वह हमें भविष्य में बड़े कार्यों को नूतन संकल्प के साथ करने का साहस भी प्रदान करेगी। बढ़ा हुआ आत्मविश्वास न केवल संतुष्टि का आधार बनेगा, बल्कि स्वतः ही हमें वह खुशी प्रदान करेगा, जिसे प्राप्त करने का स्वप्न हम सदा देखते हैं।

मन में आत्मविश्वास पैदा करने व अपनी खुशी को बढ़ाने का एक अच्छा उपाय यह भी है कि हम विगत अतीत में अपने द्वारा प्राप्त की गई सफलताओं को याद करें। अतीत में मिली कामयाबियों व जटिल संघर्षों को याद करने से मन में यह आत्मविश्वास स्वतः पैदा होता है कि हम भविष्य में भी इस तरह के अच्छे कार्य कर सकते हैं।

कुछ व्यक्तियों के मन में यह हीन भावना होती है कि वे सुंदर नहीं हैं। यह सच है कि सुंदर बन जाना व्यक्ति के हाथ में नहीं होता, लेकिन अपने अंतर्मन को श्रेष्ठ बनाया जा सकना जरूर संभव है और इसके लिए हमें यथासंभव प्रयास करना चाहिए। नियमित स्वाध्याय, सत्संग, पीड़ितों की सेवा, सुनी व पढ़ी गई अच्छी बातों पर चिंतन, मनन एवं उन्हें जीवन में उतारने के लिए किए गए प्रयत्न ही वे सब माध्यम हैं, जो मनुष्य को सुखी बनाते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी का कथन **'सुख बाँटें और दुःख बँटाएँ'**—जीवन की खुशियों को बढ़ाने का मूल मंत्र है। हमारे सुख बाँटने में ही हमारी खुशी छिपी है और यदि हम इसे छिपाकर रखते हैं तो यह कभी विकसित नहीं हो पाती और दूसरों के दुःख को बँटाने से एक तो उनका दुःख कम होता है और दूसरा इस परोपकार से हमें वह आंतरिक संतुष्टि मिलती है, जिसकी सुगंध वायु में फैलती है और सभी को आनंदित करती है।

अपनी नकारात्मक सोच से मुक्ति पाने के लिए सकारात्मक सोच को अपनाना जरूरी है और इसे अपनाने के लिए जरूरी है कि हम न केवल दिए गए उपायों को अपनी सोच में सम्मिलित करें, वरन उनका निरंतर प्रयोग भी करें, तभी व्यक्तित्व में स्थायी परिवर्तन ला पाना संभव होगा।

हम तक पहुँचता यह अनजाना जहर

हम सभी नियमित रूप से जो भी फल, सब्जियाँ, अनाज आदि खाते हैं, उसमें कुछ अंश कीटनाशक दवाइयों का भी घुला-मिला होता है। हमारे देश में फसलों को कीटाणुओं से बचाने के लिए विभिन्न तरह के कीटनाशकों का बहुतायत से प्रचलन हो गया है। वैज्ञानिक तरीके के तैयार किए गए इन कीटनाशक रसायनों में कीटों को मारने की अद्‌भुत क्षमता होती है। ये सभी कीटनाशक एक तरह के हलके विष हैं, जिनका प्रयोग फसलों पर किया जाता है। आज यह विष विभिन्न तरीकों से हमारे जीवन में घुलता जा रहा है।

इनमें मुख्य रूप से दो तरीके हैं, जिनके माध्यम से यह जहर हम तक पहुँच रहा है। एक तो मक्खी, मच्छर व तिलचट्टों के खिलाफ हम जिन रासायनिक द्रव्यों का इस्तेमाल करते हैं, उनके माध्यम से तो दूसरा माध्यम फसलों पर छिड़के जाने वाले कीटनाशक हैं, जिनके अंश फल, सब्जी व अनाजों के माध्यम से हम तक पहुँचते हैं।

आज घरों में मच्छरों से बचाव के लिए मच्छरदानियों का प्रयोग न के बराबर किया जा रहा है, जबकि मॉस्किटो रेप्लेन्ट्स का प्रयोग सर्वाधिक किया जा रहा है, लेकिन इनके साइड इफेक्ट्स भी लोगों में देखने को मिल रहे हैं, जिन पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। इसके कारण लोग रात्रि में आराम से सो तो लेते हैं, लेकिन आँखों में जलन, सुस्ती, चक्कर जैसे लक्षण इसके परिणामस्वरूप देखने में आ रहे हैं। आज यह जहर हवा में घुलता-मिलता जा रहा है और हमारे साँस लेने के साथ हमारे शरीर में पहुँचता जा रहा है।

अमेरिका के ड्यूक विश्वविद्यालय के फार्मेकोलॉजिस्ट मुहम्मद अबु-डोनिया ने मॉस्किटो रेप्लेन्ट्स में इस्तेमाल किए जाने वाले 'डीट' नामक रसायन का चूहों पर प्रयोग किया और पाया कि इसके प्रभाव क्षेत्र में रहने वाले चूहों की दिमागी कोशिकाएँ (ब्रेन सेल्स) मरने लगीं और उनका व्यवहार आक्रामक हो गया। इनकी त्वचा में भी कई तरह के परिवर्तन देखे गए। इसके निष्कर्ष में उन्होंने यह कहा कि इनसान तेज असर वाले घरेलू कीटनाशकों से दूर रहे तो ही अच्छा है।

इसी तरह एक और अध्ययन १९८० के दशक में अमेरिका के एवरग्लैड पार्क इलाके में रहने वाले कर्मचारियों पर किया गया और यह देखा गया कि मॉस्किटो रेप्लेन्ट्स का नियमित इस्तेमाल करने वाले लोगों को त्वचा में खुजली, आँखों में जलन, सुस्ती, ओंठों पर खुश्की और सिरदरद जैसी समस्याएँ होने लगीं। इन अध्ययनों से सचेत अमेरिका, कनाडा और यूरोपीय संघ के देशों में मॉस्किटो रेप्लेन्ट्स से लेकर अन्य घरेलू कीटनाशकों में डाले जाने वाले रसायनों की मात्रा सख्ती से नियंत्रित की जाने लगी है, पर हमारे देश में अभी तक ऐसा कोई मापदंड या कानून नहीं है, जो इन खतरनाक रसायनों का निश्चित मात्रा से ज्यादा इस्तेमाल करने वाली कंपनियों को दंडित करे या लोगों को इसके हानिकारक प्रभावों के बारे में उतना ही जागरूक करे।

कीटनाशकों के सर्वाधिक प्रयोग का दूसरा प्रकरण खेतों में फल, सब्जियों व अनाजों को कीटों से बचाने के लिए कीटनाशक रसायनों के छिड़काव से जुड़ा हुआ है। इनके प्रयोग करने से हमारी फसलें कीटों के द्वारा नष्ट होने से बच जाती हैं, जिससे हमारे देश में हरित क्रांति आई और अनाज के लिए विदेशों पर हमारी निर्भरता समाप्त हो गई, लेकिन उसका फसलों पर विपरीत व नकारात्मक प्रभाव यह पड़ा है कि हमारे देश की उर्वर उपजाऊ जमीन अब कीटनाशकों के जहर में डूबती जा रही है और आज हालात ये हैं कि फैक्टरियों और खेतों के जरिए हम लोगों तक पहुँचने वाला यह जहर हमारे शरीर में इस कदर घुल-मिल गया है कि वैज्ञानिक आशंकित हैं कि कहीं इसका असर हमारी भावी पीढ़ी को विकलांग न बना दे। इस पर कई सर्वेक्षण भी किए जा रहे हैं जो जमीन में घुलने वाले जहर और उसके असर को स्पष्ट करते हैं।

चंडीगढ़ के प्रसिद्ध अस्पताल पीजीआईएमआईआर करीब दो साल तक पंजाब के २५ गाँवों में किए गए

सर्वेक्षण के आधार पर इस नतीजे पर पहुँचा है कि खेतों में इस्तेमाल किए गए कीटनाशकों और खतरनाक औद्योगिक कचरे ने वहाँ के लोगों के स्वास्थ्य पर बहुत हानिकारक प्रभाव डाला है। इन लोगों के रक्त परीक्षण करने पर उनने पाया कि लगभग ६५ प्रतिशत लोगों में जेनेटिक म्यूटेशन की शुरुआत हो चुकी है। केंद्रीय प्रदूषण निगरानी प्रयोगशाला के साथ सेन्टर फॉर साइन्स एंड इनवायरनमेन्ट (सीएसई) ने पंजाब के गाँवों में रहने वाले अधिकतर किसानों के शरीर में कीटनाशक अवशेषों की भारी मात्रा पाई है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की फूड एंड एग्रीकल्चर इकाई ने मनुष्यों में कीटनाशकों की उपस्थिति के जो मानक तय किए हैं, सीएसई के अनुसार ये आँकड़े निर्धारित मानकों की तुलना में १५८ गुना ज्यादा थे। पंजाब के बारे में इस तरह की रिपोर्टें पहले भी आई हैं, जिन पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है और इन परिस्थितियों का कारण है खेतों में अधिक मात्रा में कीटनाशकों का छिड़काव होना।

कीटनाशक हमारे लिए हानिकारक होते हैं। जानवरों पर इनके प्रयोग से यह पाया गया है कि इनसे जानवरों के मस्तिष्क का विकास प्रभावित होता है और उनकी दिमागी संरचना में विकार आने लगता है। यह कीटनाशक कैंसर उत्पन्न करने, मस्तिष्क की कोशिकाओं की संख्या में गिरावट लाने, डीएनए की सिन्थेसिस प्रक्रिया की रफ्तार रोकने और बच्चों की सीखने की क्षमता, ध्यान केंद्रित करने की प्रक्रिया और उनके व्यवहार पर सीधा असर डालते हैं।

यद्यपि विश्व में बहुत से स्थानों पर कीटनाशकों का उपयोग किए बिना खेती के सफल प्रयोग किए गए हैं, जो आज ऑर्गेनिक फार्मिंग के नाम से विख्यात है, तथापि अभी भी कुछ स्थानों पर बिना कीटनाशकों के खेती कर पाना संभव नहीं। आवश्यकता यह है कि ऐसे में इनके प्रयोग में सभी सावधानियाँ बरती जाएँ तथा ऐसे रसायनों का प्रयोग न किया जाए जो लाभ कम और हानि ज्यादा पहुँचाते हैं।

इसी तरह घरों में इस्तेमाल किए जाने वाले मॉस्किटो रेप्लेन्ट्स का जब भी प्रयोग हो, घर की खिड़कियाँ खुली हों, ताकि वायु का आवागमन बना रहे और इनसे हमें अधिक नुकसान न हो। इसके साथ ही कॉकरोच, तिलचट्टों व अन्य कीड़ों से बचाव हेतु घरों में छिड़काव किए जाने वाले स्प्रे आदि के अधिक प्रयोग से बचा जाए, बहुत आवश्यकता पड़ने पर ही इनका प्रयोग किया जाए और प्रयोग करने के सात-आठ घंटे बाद ही इन स्थलों में निवास किया जाए या अन्य कार्य किया जाए। यह भी ध्यान रखा जाए कि घर में बच्चे इन्हें न छुएँ और न ही इनके साथ खिलवाड़ करें। सावधानी व इनसे बचने के सुरक्षित उपाय ही वे साधन हैं, जो हमें इनके नुकसानदायक असर से बचा सकते हैं। ✿

मनुष्य को एक पंख उग आया—विज्ञान का पंख। उसने जोर लगाया और आकाश में उड़ गया, पर वह अब मुक्त और शांत नहीं था। उसे चारों ओर से जटिलता की आँधियों ने सताना आरंभ कर दिया। मनुष्य बहुत घबराया। उसने भगवान से प्रार्थना की—"हे प्रभो! कैसे संकट में डाल दिया। इससे तो अच्छा था, हमें जन्म ही न देते।" आकाश को चीरती हुई एक आवाज आई—"वत्स! आत्मज्ञान का एक और पंख उगा। भीतर वाली चेतना का विकास कर, वही संतुलन पैदा कर सकेगी।"

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार – ६४

जप एवं प्राणायाम का समायोजन पर प्रभाव



समायोजन हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। जीवन के हर पहलू में हमें समायोजन की जरूरत पड़ती है। समायोजन का मतलब है—किन्हीं भी परिस्थितियों में बेहतर तालमेल बैठाना। बाहरी सामंजस्य के साथ-साथ मनुष्य को आंतरिक सामंजस्य की भी जरूरत पड़ती है, लेकिन जब हम वर्तमान परिस्थिति के अनुसार तालमेल नहीं बैठा पाते तो इससे मानसिक असंतुलन उत्पन्न होने लगता है। व्यक्ति की मानसिकता पर ही उसका आत्मसम्मान-आत्महीनता, प्रसन्नता-अवसाद, शांति-दुश्चिंता, सहजता-मनोग्रस्तता, स्वाधीनता-पराधीनता, स्वास्थ्य बोध-स्वास्थ्य चिंता व निर्दोषभाव-दोषभाव निर्भर करता है और ये सभी समायोजन मनस्तापीयता के विभिन्न कारक हैं।

जैसे-जैसे व्यक्ति का समायोजन स्तर कम होता जाता है, वैसे-वैसे उसकी समस्याएँ बढ़ती जाती हैं, फिर उसका क्षेत्र चाहे जो भी हो। आज की परिस्थितियों में व्यक्ति का समायोजन सबसे अधिक प्रभावित हो रहा है और इस असमंजस भरी परिस्थिति का सबसे अधिक सामना करना पड़ रहा है छात्राओं को। इसी कारण वर्ष २०१० में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मानवीय चेतना एवं योग विज्ञान विभाग के अंतर्गत शोधार्थी श्वेता रावत द्वारा छात्राओं के समायोजन मनस्तापीयता पर शोध-अध्ययन पूरा किया गया। इस शोध-अध्ययन का विषय था—"**छात्राओं के समायोजन मनस्तापीयता स्तर पर प्रणव जप, उज्जायी प्राणायाम व शीतली प्राणायाम का प्रभाव**"। यह अध्ययन कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या के संरक्षण एवं डॉ० एच० एन० मिश्र के निर्देशन में पूरा किया गया।

इस प्रयोगात्मक अध्ययन में कृष्णा इन्स्टीट्यूट ऑफ इन्जीनियरिंग एंड टैक्नोलॉजी, गाजियाबाद तथा वनस्थली विश्वविद्यालय, राजस्थान से आकस्मिक प्रतिचयन द्वारा १८ से २५ वर्ष की उम्र की १०० छात्राओं का चयन किया गया, जिसमें ५० छात्राओं को प्रयोगात्मक समूह में और ५० अन्य छात्राओं को नियंत्रित समूह में रखा गया। प्रयोग आरंभ करने से पूर्व सभी छात्राओं के प्रारंभिक परीक्षण हेतु समायोजन-मनस्तापीयता इन्वेन्टरी का प्रयोग किया गया, जिसका निर्माण डॉ० रामनयन सिंह (गाजीपुर), तथा डॉ० महेश भार्गव (आगरा) द्वारा किया गया था। प्रारंभिक परीक्षण के बाद प्रयोगात्मक समूह की छात्राओं को तीन महीने तक लगातार ४५ मिनट का यौगिक अभ्यास कराया गया, जिसमें छात्राओं द्वारा १५ मिनट उज्जायी प्राणायाम, १५ मिनट शीतली प्राणायाम तथा १५ मिनट प्रणव जप का अभ्यास किया गया।

तीन महीने के पश्चात पुनः सभी छात्राओं का प्रारंभिक परीक्षण के समान ही दोबारा परीक्षण किया गया। इसके पश्चात किए गए दोनों परीक्षणों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि प्रयोगात्मक समूह की छात्राओं में नियंत्रित समूह की छात्राओं की अपेक्षा समायोजन स्तर में वृद्धि हुई तथा मनस्तापीयता स्तर में कमी हुई। इन छात्राओं में समायोजन से संबंधित निम्न आयामों में सार्थक वृद्धि पाई गई—आत्मसम्मान, प्रसन्नता, शांति, सहजता, स्वाधीनता, स्वास्थ्य बोध, निर्दोष भाव और मनस्तापीय आयामों जैसे—आत्महीनता, अवसाद, दुश्चिंता, मनोग्रस्तता, पराधीनता, स्वास्थ्य चिंता, दोष भाव में सार्थक कमी देखी गई।

छात्राओं में जो यह उपर्युक्त प्रभाव देखा गया इसका कारण यह था कि उज्जायी प्राणायाम, शीतली प्राणायाम व प्रणव जप—ये तीनों ही महत्त्वपूर्ण यौगिक क्रियाएँ हैं, जो मस्तिष्क पर प्रशांतिकारक प्रभाव डालती हैं, जिनसे मानसिक स्थिरता व शांति मिलती है और यह स्थिरता व शांति व्यक्ति के समायोजन स्तर में वृद्धि करती है। प्रणव जप व उज्जायी प्राणायाम की क्रिया में शीतली प्राणायाम की अपेक्षा ज्यादा स्पंदन उत्पन्न होता है। शीतली प्राणायाम की क्रिया में ग्रीवा क्षेत्र में घर्षण से स्पंदन उत्पन्न होता है। तीनों ही यौगिक क्रियाओं से उत्पन्न होने वाले स्पंदन मांसपेशियों के तनाव को कम कर मानसिक उत्तेजना को शिथिल कर देते हैं। जिससे विभिन्न तंत्रिकाओं का तनाव दूर होता है और ये सुचारु

रूप से अपना कार्य करने लगते हैं। इसके साथ ही मस्तिष्क से उत्पन्न होने वाले विभिन्न स्राव भी संतुलित हो जाते हैं। इस अवस्था में मस्तिष्क शांत हो जाता है और उससे अल्फ़ा तरंगें निकलने लगती हैं।

उज्जायी प्राणायाम द्वारा ऑक्सीजन अवशोषण की मात्रा बढ़ती है। इस प्राणायाम की प्रक्रिया द्वारा शुद्ध रक्त ज्यादा मात्रा में ऑक्सीजनयुक्त होकर धमनियों द्वारा समस्त शरीर की कोशिकाओं को प्राप्त होता है, जिससे कोशिकीय चयापचयी दर बढ़ जाती है। इस प्रकार कोशिकाएँ ऊर्जावान व स्वस्थ हो जाती हैं। इन स्वस्थ कोशिकाओं सहित शरीर के विभिन्न तंत्रों के सुधार के साथ ही स्वास्थ्य में भी सुधार होने लगता है, जो व्यक्ति के मन की चिंता को कम करता है।

शीतली प्राणायाम की क्रियाविधि में जब जिह्वा को नली रूप में बनाकर तेजी से श्वास ली जाती है तो श्लेष्मा झिल्ली का तंत्रिका जाल इस शीतलता को मस्तिष्क तक ले जाता है। यह प्रक्रिया जैव प्रेरक व तापमान नियमन से संबंधित मस्तिष्क केंद्रों को प्रभावित करती है तथा मानसिक व भावनात्मक उत्तेजनाओं को शांत करती है, जिसके कारण मनस्तापीयता के लक्षणों में सार्थक कमी देखी गई।

प्रणव जप के समय उच्चारित किए जाने वाले 'अ', 'उ', 'म' अक्षरों द्वारा तंत्रिका तंत्र से संबंधित सबसे प्रमुख अंगों का स्पंदन होता है। यह स्पंदन इन अंगों में मालिश का कार्य करता है, जो इन अंगों में होने वाले तनावों को शिथिल कर उत्तेजनाओं के प्रवाहों को तोड़ देता है, जिससे मस्तिष्कीय तनाव समाप्त हो जाता है व परानुकंपी तंत्र उत्तेजित हो जाता है। प्रणव जप से प्राप्त स्पंदन अनुकंपी तंत्रिका तंत्र की क्रियाशीलता को कम कर देते हैं, जो विभिन्न मनस्तापों का कारण कहे जाते हैं। इसके साथ ही इन स्पंदनों से एड्रिनल ग्रंथि से स्रावित होने वाले हॉर्मोन, जो चिंता के निवारण के लिए जिम्मेदार होते हैं सुचारु रूप से स्रावित होने लगते हैं। इसके परिणामस्वरूप मस्तिष्क प्रशांत होने लगता है।

अतः इस शोध-अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि उज्जायी प्राणायाम, शीतली प्राणायाम व प्रणव जप के संयुक्त अभ्यास से व्यक्ति के समायोजन स्तर में वृद्धि होती है और उसका मनस्तापीयता का स्तर घटता है। ✿

मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर रंगून में निर्वासित जीवन बिता रहे थे। उन्हें अभावग्रस्त जीवन जीते देख उनके एक शुभचिंतक ने उनसे पूछा—"आप इतने कष्टों को मौन होकर क्यों सहते हैं? उनका विरोध क्यों नहीं करते?" बहादुर शाह जफर ने शांत स्वर में उत्तर दिया—"विरोध की क्या आवश्यकता है! जो अपराध मुझसे हुए हैं, मैं उन्हीं का तो प्रायश्चित कर रहा हूँ।" शुभचिंतक ने पुनः पूछा—"वे क्या अपराध हैं, जो आपसे हुए हैं?"

बहादुर शाह जफर बोले—"मैं एक अखंड राष्ट्र का सम्राट था और उसका अधिपति होने के नाते यह मेरा नैतिक दायित्व था कि मैं उसकी सीमाओं को अक्षुण्ण रखूँ। जब उसे मेरे संरक्षण की आवश्यकता थी, तब मैंने अपने कर्त्तव्य से मुँह मोड़ लिया और आज वह राष्ट्र अँगरेजों के हाथ गिरवी चला गया। दायित्व से मुँह मोड़ लेना ही मेरा वह अपराध है, जिसका प्रायश्चित मैं मर कर भी न कर पाऊँगा।" थोड़ा रुककर बहादुर शाह जफर उस मित्र से पुनः बोले—"यदि कुछ कर सको तो इतना करना कि मेरी कब्र यहीं बनाना। जीते जी जिस राष्ट्र की मैं रक्षा न कर सका, उस राष्ट्र में मृत्यु उपरांत जाना भी शोभा का विषय न होगा।" जीवन हर व्यक्ति को अवसर प्रदान करता है—अपने कर्त्तव्यों का पालन करने वाले सौभाग्य के अधिकारी बनते हैं और विमुख होने वाले पश्चात्ताप के।

ब्रह्मरंध्र पर संयम से होता है ब्रह्मज्ञानियों का ज्ञान

अंतर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग अपनी प्रक्रिया व परिणाम में चेतना के नए गवाक्ष खोलते हैं। जीवन को नया आयाम देते हैं। जीवन उतना ही नहीं है, जितना कि हमारी आँखें देख पाती हैं और बौद्धिकता, तार्किकता जितना समझ पाती हैं। जो दृश्य है उसके पार व परे भी बहुत कुछ है। भले ही उसे हमारे चर्मचक्षु न देख सकें, हमारी बुद्धि उसे अदृश्य कहे, फिर भी यह अदृश्य उतना ही सत्य है, जितना कि दृश्य। परमेश्वर की अनंतता के अनुरूप जीवन व जगत भी अनंत है। इसकी कड़ियाँ जितनी दृश्य जगत में हैं, उतनी ही अदृश्य जगत में। अपनी सामान्य चेतना में मनुष्य इसे समझ नहीं पाता। किसी के कहने-बताने पर उसको अनसुनी-अनदेखी कर देता है। समझदार कहे जाने वाले भी प्रायः यह नासमझी करते देखे जाते हैं। बुद्धिमानों में भी यह बुद्धिहीनता देखी जा सकती है। बुद्धिमानों की इस बुद्धिहीनता को, समझदारों की इस नासमझी को दूर करने का बस, एक ही उपाय है, अंतर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग।

इस महाविज्ञान के प्रयोग मानव चेतना को विस्तार देते हैं। दृश्य व अदृश्य का सुखद संयोग कराते हैं। तब होता है अनुभूतियों का विस्तार, हो पाती है अनुभवों की व्यापकता। फिर दृश्य की भाँति ही अदृश्य भी अनुभव होने लगता है। मन की देहरी लाँघने के बाद यह असंभव सहज संभव होता है। ऐसे में धरती का जीवन व जगत ही नहीं, अन्य लोकों का जीवन व जगत भी अपना बनता है। संवाद के अवसर मिलते हैं, भेंट-मुलाकातों का सिलसिला चलता है। भूत-प्रेत-पिशाचों के किस्से तो प्रायः सुने जाते हैं। सूक्ष्म में तनिक-सा भी प्रवेश इनके अस्तित्व से हमारा परिचय करा देता है। यह कार्य गाँव, गली में भटकने वाले ओझा-तांत्रिक भी कर लेते हैं। इसे योग-साधना से जोड़कर नहीं देखा जा सकता। अंतर्यात्रा विज्ञान अथवा योग विज्ञान के परिणाम, साधक का संवाद सिद्धों से कराते हैं। दिव्य लोकों के महर्षियों से भेंट मुलाकात का अवसर प्रदान करते हैं।

इस योगकथा की पिछली कड़ी में योग के ऐसे ही एक प्रयोग की चर्चा की गई थी। इसमें कहा गया था—कूर्म नाड़ी में संयम करने से स्थिरता होती है। यह स्थिरता योग की उच्च अनुभूतियों के लिए आवश्यक है। जब तक तन-मन अस्थिर है, तब तक योग की उच्च कक्षा में प्रवेश संभव नहीं है। अस्थिरता की दशा में अंतश्चेतना की उच्च कक्षा की आहटें सुनाई नहीं देतीं। सच यही है कि अस्थिरता उच्च अनुभूतियों में बाधा है। इस बाधा को योगी कूर्माकार नाड़ी में संयम करके पूरा कर लेता है। अपने संयम की प्रगाढ़ता के अनुरूप योगी पूर्ण रूप से स्थिर हो जाता है। स्थिरता प्राप्त होने के बाद संभव हो पाता है चेतना के उच्च आयाम में प्रवेश। स्वयं ही उद्घाटित होते हैं अदृश्य के द्वार।

इसे महर्षि पतंजलि ने अपने अगले सूत्र में स्पष्ट किया है—

मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्॥ ३/३२॥

शब्दार्थ= मूर्धज्योतिषि= मूर्धा की ज्योति में (संयम करने से); **सिद्धदर्शनम्**= सिद्ध पुरुषों के दर्शन होते हैं।

भावार्थ= सिर के शीर्ष भाग के नीचे की ज्योति पर संयम करने से समस्त सिद्धों के अस्तित्व से जुड़ने की क्षमता मिल जाती है।

अदृश्य के दर्शन कराने वाला है यह सूत्र। इस महत्त्वपूर्ण सूत्र में मानव चेतना के नए आयाम को उद्घाटित करने की क्षमता है। इस सूत्र में निहित सत्य को अनुभव करने के लिए यह समझना जरूरी है कि मनुष्य स्वयं में क्रमिक विकास है। केवल इतना भर नहीं है कि मनुष्य विकसित हो रहा है, वह विकास का माध्यम भी है। वह स्वयं ही विकास है। मानव जीवन का यह एक ऐसा सत्य है, जिसे अनुभव कर आनंदित हुआ जा सकता है; क्योंकि यही तो मनुष्य के गौरव की परिभाषा है। पदार्थ तो प्रारंभिक बिंदु है—अल्फा प्वाइन्ट और परमात्मा है अंतिम शिखर—ओमेगा प्वाइन्ट। मनुष्य इन दोनों के बीच का सेतु है। भौतिक पदार्थ मनुष्य से गुजरकर परमात्मा में रूपांतरित हो जाता है।

योग की संपूर्ण देशना यही है कि ऊर्ध्वगामी होने के लिए, अपने से पार जाने के लिए हमें क्या करना है। ओमेगा प्वाइन्ट—शिखर बिंदु तक पहुँचने के लिए यह कैसे सहयोग करता है, जिससे कि संपूर्ण ऊर्जा निर्मुक्त होकर, रूपांतरित हो जाए, पदार्थ-परमात्मा में, दिव्यता में रूपांतरित हो जाए। योग मनुष्य की पूरी की पूरी अंतर्यात्रा का, तीर्थयात्रा का नक्शा है। मूलाधार से सहस्रार तक का नक्शा है। अगर मनुष्य मूलाधार पर—काम केंद्र पर अटक जाए तो फिर उसका विकास असंभव है। ज्यादातर लोग यहीं अटके रह जाते हैं, लेकिन अगर अंतर्यात्रा की जाए तो सहस्रार पर, ज्ञान के केंद्र पर पहुँचना संभव है।

यह सहस्रार सिर के मूर्द्धन्य भाग के ठीक नीचे अवस्थित होता है। सहस्रार सिर का एक सूक्ष्मद्वार है। ठीक वैसे ही जैसे कि जननेंद्रिय मूलाधार का सूक्ष्म द्वार होती है। जननेंद्रिय के सूक्ष्म तार से व्यक्ति नीचे की ओर, प्रकृति में, जीवन में, दृश्य जगत में, पदार्थ में, रूप में, आकार में आता है। पूरी तरह से तो नहीं, पर लगभग इसी तरह व्यक्ति के सिर के मूर्द्धन्य भाग में एक निष्क्रिय इंद्रिय होती है। वहाँ भी एक सूक्ष्म द्वार होता है। जब ऊर्जा सहस्रार की ओर जाती है, तो वह सूक्ष्म द्वार ऊर्जा के विस्फोट से खुल जाता है। तब वहाँ से व्यक्ति सूक्ष्म प्रकृति के साथ, उच्चस्तरीय चेतना के साथ जुड़ जाता है। इस अवस्था को हम चाहें तो सिद्धावस्था भी कह सकते हैं।

सामान्य जीवन क्रम में तो यह अनुभूति नहीं होती। इसका कारण बस इतना ही है कि सामान्य जीवन की गति नीचे की ओर है। इसे ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर शरणागति आवश्यक है। जिनमें ये तीनों हैं, उनकी अंतश्चेतना कर्म से, संस्कार से मुक्त होती है। जन्म-जन्मांतर के अवरोधों का शमन होता है। चेतना की निम्न गति ऊर्ध्वगति में परिवर्तित होती है और तब इस सूत्र में कहे गए मूर्द्धज्योतिषि का सत्य स्पष्ट होता है। यह बात साफ होती है कि सिर के कपोल में एक छिद्र है। इसी को ब्रह्मरंध्र कहते हैं। वहाँ जो प्रकाशमयी ज्योति है, उसमें संयम करने से पृथ्वी और स्वर्गलोक के बीच में विचरने वाले सिद्धों के दर्शन होते हैं।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव के जीवन में इस सूत्र के सत्य की अनुभूति स्वाभाविक क्रम में प्राप्त होती है। अपनी अंतरंग आध्यात्मिक वार्ताओं के क्रम में उन्होंने एक ऐसे प्रसंग का उल्लेख किया था। इस क्रम में उन्होंने बताया कि तब वह वेदभाष्य करने का विचार कर रहे थे। उन दिनों इसी पर अनवरत चिंतन, मनन का क्रम चलता था। एक दिन साँझ को जब वह वृंदावन के पास यमुना तट पर बैठे हुए वेद की ऋचाओं पर चिंतन कर रहे थे, तब उनके चिंतन की प्रगाढ़ता ध्यान में परिवर्तित हो गई। स्वाभाविक रूप से उनकी ऊर्ध्वगामी चेतना सहस्रार में जाकर संयमित हो गई। सहस्रार के इस संयम क्रम में उन्होंने देखा कि अंतरिक्ष में दो अतिशय तेजस्वी पुरुष जा रहे हैं। उनकी भी दृष्टि इनकी ओर गई। संपर्क संवाद में बदला और ज्ञात हुआ कि ये और कोई नहीं, बल्कि ब्रह्मर्षि वसिष्ठ एवं महर्षि वामदेव हैं।

आह्वान करने पर ये दोनों उनके समक्ष प्रकट हो गए। गहन संयम समाधि में जिनका साक्षात्कार हो रहा था, वे अब नेत्रों के सामने प्रकट थे। पूज्य गुरुदेव ने उनका स्वागत, सम्मान किया। साथ ही वार्ता के क्रम में अपना उद्देश्य भी स्पष्ट किया। बताया कि वह वेदभाष्य करने की योजना बना रहे हैं। उनके इस संकल्प की पावनता को जानकर इन दोनों महर्षियों ने कई बहुमूल्य सुझाव दिए। साथ ही यह भी आश्वासन दिया कि समय-समय पर इस कार्य में वे अपना सहयोग देते रहेंगे। गुरुदेव ने इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए बताया कि वेदभाष्य के क्रम में सचमुच ही इन महानुभावों का प्रकट-अप्रकट, प्रत्यक्ष-परोक्ष सहयोग मिलता रहा। मूर्द्धाज्योति पर संयम सिद्ध होने पर ऐसे दिव्य अनुभव सामान्य बन जाते हैं। ✿

मुमुक्षोर्बुद्धिरालम्बमन्तरेण न विद्यते।
निरालम्बैव निष्कामा बुद्धिर्मुक्तस्य सर्वदा॥

—अष्टावक्र गीता

मुमुक्षु पुरुष की बुद्धि आलंबन के बिना नहीं रहती। मुक्त पुरुष की बुद्धि सदा निष्काम और आश्रयरहित रहती है।

►समूह साधना वर्ष◄

श्रीराम भक्ति की साधना—८२

भक्त व भगवान का अद्भुत मिलन



'योगवासिष्ठ' इस नाम को ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने अपने मन में कई बार दोहराया। उनके मन की वीथियों में यह नाम गूँज उठा। वे सोचने लगे जो ग्रंथ उन्होंने अभी लिखा नहीं, जिसकी कथा उन्होंने अभी कही नहीं, उसके लिए महादेव ने कितना अलौकिक आशीर्वाद दिया। भोलेनाथ सचमुच ही अवढरदानी हैं। उनके देने की कोई सीमा नहीं, उनकी कृपा का कोई पारावार नहीं है। पुलकित मन वसिष्ठ ऐसा सोच रहे थे तभी उनके सामने बैठे मदारी वेशधारी सदाशिव ने कहा—''ऋषि वसिष्ठ! अब तुम्हें कर्त्तव्य कर्म में संलग्न होना है।'' ''अवश्य प्रभु!'' वसिष्ठ ने श्रद्धा से सिर झुकाते हुए कहा। उनके साथ देवी अरुंधती ने भी माथा झुकाया। फिर वे महादेव के इस अटपटे वेश को देखने लगीं। उन्हें इस तरह चकित भाव से देखते हुए देखकर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ बोले—''देवी! प्रभु का वेश इनकी वास्तविकता है। सचमुच ही वे इस जगत को नचाने वाले मदारी हैं। समूचा संसार इन्हीं के इशारों पर नाचता है। इनकी इच्छा, इनके संकेत के बिना कहीं कुछ भी संभव नहीं है।''

भक्ति में भीगी ऋषि वसिष्ठ की इस बात को सुनकर भगवान सदाशिव हँस दिए। उनके पास में खड़े स्वर्णिम कपि के रूप में खड़े हनुमान ने सहमति के स्वर में किलकारी ध्वनि की। हाँ! देवी अरुंधती का मन श्रद्धाविभोर था। उनकी इस मन:स्थिति में तनिक हिलोर उपजाते हुए ऋषि वसिष्ठ ने उनसे कहा—''देवी! अब हम यहाँ से महाराज दशरथ के दरबार में जाएँगे। आखिर श्रीराम एवं हनुमान का मिलन भी तो होना है।'' 'प्रथम मिलन' देवी अरुंधती ने ये दो शब्द जोड़कर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ के कथन को हलकी-सी मुस्कान के साथ संशोधित किया; जबकि मिलन शब्द के दो बार उच्चारण से हनुमान के मन में भक्ति का तीव्र उद्रेक हुआ। इस अनुभूति के स्पर्श से पुलकित होकर भगवान सदाशिव ने कहा—''भक्त एवं भगवान के मिलन से अधिक पवित्र, श्रेष्ठ, सुखकारी, सौंदर्यपूर्ण एवं दर्शनीय कोई अन्य घटना नहीं हो सकती।''

''अवश्य प्रभु!''—कहते हुए देवी अरुंधती ने महादेव के इस कथन के साथ अपनी हामी भरी और इन सभी को विदा देने के लिए तैयार हुईं। इन क्षणों में वे सोचने लगीं—काश! भगवान महादेव एवं हनुमान के उनके वास्तविक रूप में दर्शन हो पाते। अपने मन के इस भाव को उन्होंने मन में ही रहने दिया। सोचा, कहीं इस भाव के व्यक्त करने में भगवान सदाशिव की लीला में बाधा न पड़े। वैसे भी सच्चा भक्त वही है एवं सच्ची भक्ति वही है, जो कि भगवान की इच्छा के अनुरूप स्वयं को गढ़े न कि अपने आराध्य को, अपने भगवान को अपनी इच्छा के अनुरूप परिवर्तित करने की चेष्टा करे।

अंतर्यामी महादेव को अरुंधती के इन भावपूर्ण विचारों ने छू लिया। वे बोले—''तुमने भक्त व भक्ति की एकदम सच्ची, समुचित, सम्यक व सटीक परिभाषा सोची है, लेकिन इससे जुड़ा एक सत्य और भी है और वह यह कि भगवान को अपने सच्चे भक्त अतिशय प्रिय होते हैं। अपने भक्त से अधिक, उसकी भक्ति से अधिक उनके लिए कुछ भी नहीं।'' ऐसा कहते हुए महादेव अपने स्वाभाविक रूप में प्रकट हो गए। त्रिनेत्रधारी, त्रिशूलपाणि, शशांकशेखर, डमरूधर, गंगा को धारण किए हुए जगदीश्वर सदाशिव का साक्षात्कार वसिष्ठ-अरुंधती के लिए परम सौभाग्य था। इसी के साथ ग्यारहवें रुद्र हनुमान भी अपने स्वाभाविक रूप में उनके सम्मुख प्रकट हो गए। उदयकालीन सूर्य की भाँति प्रकाशित हो रहे थे हनुमान। हर और हनुमान को इस तरह एक साथ देखकर भावविह्वल हो उठे वसिष्ठ-अरुंधती।

अरुंधती के साथ वसिष्ठ की भी अभिलाषा पूर्ण हुई। वे दोनों सोचने लगे सचमुच भगवान तो भक्त की कही-अनकही इच्छा को पूर्ण कर देते हैं। बस, वह उसके लिए सर्वथा कल्याणकारी होना चाहिए। वसिष्ठ-अरुंधती की भक्ति को पूर्णता प्रदान करने के बाद महादेव एवं हनुमान पहले की ही तरह मदारी एवं कपि के रूप में आ गए। अरुंधती ने उन्हें कृतज्ञता व कृतार्थता के साथ विदा किया। ब्रह्मर्षि वसिष्ठ को तो उनके साथ चक्रवर्ती

सम्राट दशरथ की राजसभा में जाना था। इसलिए उन्होंने सभा भवन की ओर प्रस्थान किया। आश्रम से निकलते समय देखने वालों को बड़ा अटपटा लग रहा था। ब्रह्मर्षि वसिष्ठ एक मदारी और कपि के साथ राजमार्ग पर..। कभी ऐसा दृश्य देखा न गया था। ऋषि वसिष्ठ तो प्राय: महर्षियों एवं तपस्वियों के साथ शोभित होते थे अथवा राजन्य वर्ग के साथ। आज की स्थिति तो बड़ी चकित करने वाली थी। मार्ग में जिसने देखा वही चौंका, चकराया और चकित हुआ, पर चुप रहा। कोई कुछ नहीं बोला; क्योंकि सभी को मालूम था कि ब्रह्मर्षि के सभी कार्य उद्देश्यपूर्ण व औचित्यनिष्ठ होते हैं।

राजमार्ग पर चलते हुए थोड़ी देर में ऋषि वसिष्ठ राजसभा के भवन के मुख्य द्वार पर पहुँचे। वहाँ पर खड़े प्रहरियों के समूह ने उन्हें दूर से पहचान लिया। इनमें से एक ने सम्राट दशरथ को भाग कर सूचना दी। सूचना देने वाले प्रहरी ने यह भी बताया कि आज महर्षि के साथ एक मदारी व उसका कपि भी है। राजसभा में महाराज दशरथ के साथ उनके चारों पुत्र श्रीराम, भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न भी थे। श्रीराम के अंतर्मन में प्रहरी के कथन का निहितार्थ समझ में आ गया। वे जान गए कि मदारी के वेश में स्वयं महादेव आज अयोध्या को धन्य करने के लिए पधारे हैं। उन्हें यह भी एहसास हो गया कि उनके साथ आया हुआ कपि और कोई नहीं, स्वयं उनके परम भक्त हनुमान हैं।

हनुमान की व्याकुल भावनाओं ने श्रीराम के अंतर्मन में भावों का एक उद्रेक-सा ला दिया। देवाधिदेव महादेव के आगमन का अनुभव कर वह तो विभोर हो गए। हालाँकि उन्होंने मर्यादा का पालन करते हुए अपनी इन भावनाओं को नियंत्रित रखा। अपने अंतर्भावों को उन्होंने बाहर प्रकट नहीं होने दिया। बस, अपने पिता महाराज दशरथ से केवल इतना कहा—"पिताश्री! यदि आप अनुमति दें तो मैं भी आपके साथ गुरुदेव वसिष्ठ के स्वागत के लिए द्वार तक चलूँ।" श्रीराम को यह पता था कि उनके पिता प्राय: ऋषि वसिष्ठ को लेने के लिए द्वार तक जाते हैं। महाराज दशरथ भी अपने ज्येष्ठ पुत्र के शील व विनय से सुपरिचित थे। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दे दी।

श्रीराम के साथ उनके अनुजों ने भी अनुगमन किया। इस तरह महाराज दशरथ अपने चारों पुत्रों के साथ द्वार की ओर चले। जब तक श्रीराम अपने भ्राताओं एवं पिता के साथ द्वार पर पहुँचे, तब तक ऋषि वसिष्ठ भी अपने साथ चल रहे मदारी एवं कपि के साथ सभाभवन के मुख्य द्वार तक आ चुके थे। अब श्रीराम व हनुमान आमने-सामने थे। हनुमान को देखकर श्रीराम के नयन छलक उठे, हनुमान भी अपने आराध्य को देखकर विह्वल हो उठे। इसी विह्वलता में उन्होंने भागकर श्रीराम के पाँव पर अपना माथा टिका दिया। एक अनजान कपि के ऐसे व्यवहार ने पुत्रों सहित महाराज दशरथ को चकित कर दिया। श्रीराम ने भी झुककर कपि को उठाया और उसके सिर पर हाथ फेरने लगे।

भक्त व भगवान का अद्भुत मिलन देखकर ऋषि वसिष्ठ भावविभोर हो गए। उनके साथ मदारी वेश में खड़े महादेव तो जैसे समाधिस्थ हो गए। उनके अंतर्लीन मन को अपनी ओर आकर्षित करते हुए दशरथ ने कहा—"मदारी! तुम्हारा कपि तो बहुत ही शिष्ट मालूम पड़ता है। यह अन्य कपियों की तरह अतिशय चपल व चंचल न होकर शांत है।" इस पर मदारी ने कहा—"इसमें एक नहीं अनेक विशेषताएँ हैं राजन्! इसकी अनगिनत विशेषताओं में से एक विशेषता इसकी स्वामिभक्ति भी है।" "विचित्र! आश्चर्यपूर्ण!!"—महाराज दशरथ ने चकित होते हुए कहा। तभी ऋषि वसिष्ठ ने महाराज से कहा—"नृपश्रेष्ठ! अपने कपि से कहीं अधिक गुण मदारी में हैं। ये तो समस्त कलाओं के भंडार हैं। ये स्वयं नटराज हैं।" इस कथन पर दशरथ कुछ बोल पाते, इससे पहले श्रीराम ने कहा—"गुरुदेव का कथन सर्वथा सत्य है। मुझे भी कुछ ऐसी ही प्रतीति हो रही है।" "मुझे भी एक प्रतीति हो रही है पिताश्री!"—कुमार लक्ष्मण ने थोड़ी चपलता से कहा, आज्ञा हो तो कहूँ। "अवश्य कहो वत्स!"—महाराज ने कहा। मुझे प्रतीति हो रही है कि ये मदारी और उनका यह कपि भइया राम के पुरातन व सनातन संबंधी हैं।

विचार क्रांति वकीलों जैसी दलीलें देने से संभव नहीं हो सकती। उससे तो अधिक से अधिक यह हो सकता है कि भ्रांतियों का निवारण बन पड़े, किंतु प्रचलन मात्र इतने से ही नहीं चल पड़ते हैं।

—परमपूज्य गुरुदेव

►समूह साधना वर्ष◄

परमात्मा सृष्टि भी हैं और संहार भी



(श्रीमद्भगवद्गीता के विश्वरूपदर्शनयोग नामक एकादश अध्याय की चौदहवीं किस्त)

[एकादश अध्याय की तेरहवीं किस्त में पच्चीसवें, छब्बीसवें व सत्ताईसवें श्लोक की व्याख्या की गई थी। इनमें से पच्चीसवें श्लोक में अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण से कहते हैं—''हे जगन्निवास! आपकी दाढ़ों के कारण विकराल और प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रज्वलित आपके मुखों को देखकर मैं दिशाओं को नहीं समझ पा रहा हूँ। मुझे सुख की अनुभूति नहीं हो पा रही है। इसलिए हे देवेश! आप प्रसन्न हों।'' अर्जुन की यह अनुभूति उनकी पिछली अनुभूतियों से विपरीत है। अब तक उन्होंने भगवान को दुःखहर्ता, सुखप्रदाता एवं संकटनिवारक सत्ता के रूप में अनुभव किया। आज उन्हें भगवान के भयावह रूप की अनुभूति हुई। इस अनुभूति ने उन्हें बोध दिया कि भगवान सब कुछ हैं। सुख व दुःख उन्हीं का स्वरूप है। उनसे भिन्न कहीं कोई सत्ता नहीं है।

अर्जुन की यही अनुभूति छब्बीसवें एवं सत्ताईसवें श्लोक में भी व्यक्त हुई है। अर्जुन यहाँ कह रहे हैं—''हे भगवन्! मैं देखता हूँ कि वे सभी धृतराष्ट्र के पुत्र राजाओं के समुदाय सहित आप में प्रवेश कर रहे हैं। पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण तथा सूतपुत्र—महारथी कर्ण, साथ में हमारे पक्ष के प्रधान योद्धा सभी आपके दाढ़ों के विकराल भयानक मुखों में बड़े वेग से दौड़ते हुए प्रवेश कर रहे हैं। उनमें से कई चूर्ण हुए सिरों के सहित आपकी दाढ़ों के बीच में लगे हुए दीख रहे हैं।'' अर्जुन ने जिन्हें समर्थ माना था, उनकी दृष्टि में जो पराक्रमी थे, वे सब भी भगवान के मुख में प्रवेश कर रहे हैं। कोई समर्थ होता है तो कोई महासमर्थ अथवा अतिसमर्थ, परंतु सर्वसमर्थ तो केवल परमेश्वर हैं। उनकी असीमता में सबकी सीमाएँ समा जाती हैं। वे ही हैं बलवानों का बल, पराक्रम करने वालों का पराक्रम व शक्तिवानों की शक्ति तथा समर्थों का सामर्थ्य। जब वह अपना अंश इनसे खींच लेते हैं तो उन्हें विनष्ट होना ही पड़ता है।]

अपनी इस अनुभूति की अभिव्यक्ति में अर्जुन आगे कहते हैं—

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा-
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥२८॥

शब्द विग्रह= यथा, नदीनाम्, बहवः, अम्बुवेगाः, समुद्रम्, एव, अभिमुखाः, द्रवन्ति, तथा, तव, अमी, नरलोकवीराः, विशन्ति, वक्त्राणि, अभिविज्वलन्ति।

शब्दार्थ= और हे विश्वमूर्ते! जैसे (**यथा**); नदियों के (**नदीनाम्**); बहुत से (**बहवः**); जल के प्रवाह-स्वाभाविक ही (**अम्बुवेगाः**); समुद्र के (**समुद्रम्**); ही (**एव**); सम्मुख (**अभिमुखाः**); दौड़ते हैं अर्थात समुद्र में प्रवेश करते हैं (**द्रवन्ति**); वैसे ही (**तथा**); वे (**अमी**); नरलोक के वीर भी (**नरलोकवीराः**); आपके (**तव**); प्रज्वलित (**अभिज्वलन्ति**); मुखों में (**वक्त्राणि**); प्रवेश कर रहे हैं (**विशन्ति**)।

अर्जुन व्यथित हैं, विकल-व्याकुल हैं। बड़ी विचित्र ईश्वरीयता अनुभव कर रहे हैं। नदियाँ जैसे दौड़ती हैं समुद्र की ओर, ठीक वैसे ही हम सब भी दौड़ रहे हैं मृत्यु की ओर। यह मृत्यु और कोई नहीं सिवाय परमात्मा के। अगर यह सारा जगत विश्वरूप परमात्मा का शरीर है, तो निश्चित ही हम सब इस जगत के मुँह में कहीं दाँतों के नीचे दबकर चूर्ण हो जाएँगे। फिर कोई भी हो इससे तनिक-सा फरक नहीं पड़ता है। भीष्म हों या द्रोण अथवा महारथी कर्ण, सभी चूर्ण होने वाले हैं। इसमें से

►समूह साधना वर्ष◄

यदि अभी कोई चूर्ण नहीं हो रहा है तो भी वह उसी ओर दौड़ रहा है। बड़ी मेहनत कर रहे हैं, बड़ी भाग-दौड़ कर रहे हैं, कुछ उपलब्धि के लिए।

हममें से प्राय: ज्यादातर लोग सोचते हैं कि जिंदगी में कुछ पा लेंगे। इसके लिए क्या कुछ नहीं किया जाता। अनगिनत युक्तियाँ, अनेकों षड्यंत्र यहाँ तक कि नृशंस, बर्बर हत्याएँ भी। लेकिन अंत में पाते सभी मृत्यु ही हैं। अंततोगत्वा पहुँचना सब को यहीं पड़ता है। लाख आलीशान इमारतें, महल और किले बना लें, पर अंतिम आश्रय सभी को कब्र में ही मिलता है। बेशकीमती सौंदर्य प्रसाधनों से सजाए जाने वाले शरीरों को भी श्मशान में राख के ढेर में बदलने के लिए विवश होना पड़ता है। कोई दूसरी मंजिल नहीं, कोई दूसरा मुकाम नहीं। कितना ही कोई इकट्ठा कर ले, कितनी ही उपलब्धियाँ, सोची-विचारी व क्रियान्वित की गईं असंख्य योजनाएँ, इस मृत्यु में जाकर समाप्त हो जाती हैं। मृत्यु से बचने की सभी कोशिशें नाकाम हो जाती हैं।

अर्जुन को जीवन की पूरी की पूरी धारा मृत्यु की ओर दौड़ती दिखाई पड़ रही है। यह देखकर अर्जुन भयभीत हैं उन्हें यह भय शायद न भी होता, यदि वह मृत्यु को कहीं और घटित होते हुए देखते। लेकिन ऐसा नहीं हो रहा है, जहाँ मृत्यु घटित हो रही है, वह स्वयं परमात्मा है। अर्जुन के भयभीत होने का कारण यही है। यदि मृत्यु परमात्मा के मुख में न घटित हो रही होती तो कुछ सहारा होता, थोड़ी आश्वस्ति मिलती। यदि कोई शैतान, यमदूत मृत्यु को ला रहा होता, तो परमात्मा से बचाने की याचना की जा सकती थी। अब तो बचाव का कोई भी साधन न रहा, कोई उपाय न बचा; क्योंकि मृत्यु परमेश्वर के मुख के सिवाय कुछ भी नहीं।

इस विचित्र सत्य को कोई सहजता से नहीं स्वीकार करता। यदि किसी को पता चले कि दु:ख का कारण परमात्मा ही है, मृत्यु का कारण भगवान ही है, तो उसे भय कहीं अधिक संतप्त कर देगा। जीवन में ढेरों उपाय खोजे जाते हैं, दु:ख से पीछा छुड़ाने के लिए। दु:ख का ठीकरा जब-तब किसी न किसी के सिर फोड़ने की कोशिश की जाती है। शैतान को दु:ख का कारण बताया जाता है। इस शैतान के हजारों नाम रखे गए हैं—इबलीस, बेलझेबब और भी ऐसे ही कितने नाम। परमात्मा तो हमारे लिए दु:ख से बच निकलने का उपाय है। अर्जुन की इस अनुभूति ने उनके मन की यह राहत भी छीन ली।

कबीर को भी कभी ऐसी ही अनुभूति हुई थी। अपनी इस अनुभूति को उन्होंने अभिव्यक्ति देते हुए लिखा—

चलती चाकी देखि के, दिया कबीरा रोय।
दुइ पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोय॥

चलती चक्की को देखकर कबीर कहते हैं कि मैं बहुत भयभीत हो गया, रोने लगा; क्योंकि उस चलती चक्की के दो पाटों के बीच जो दाने दब गए, वे चूर्ण हो गए। ऐसा बताकर कबीर ने कहा—"मुझे ऐसा लगा, यह सारा जगत एक चलती चक्की है, जिसके भीतर सभी पिसे जा रहे हैं।" यह घबराहट स्वाभाविक है, लेकिन स्वाभाविक केवल इसलिए है; क्योंकि अभी हम परमात्मा को पूरा नहीं अनुभव कर सके।

पूरी समझ कहती है मृत्यु यदि परमात्मा में घटित होती है तो जीवन भी उसमें ही घटित होता है। उसमें ही सब लीन होता है, तो निकलता भी सब उसी से ही है। सागर में सारी नदियाँ गिरती हैं और सारी नदियाँ सागर से ही पैदा होती हैं। सागर में विलीन होने वाली नदियाँ फिर से ऊपर चढ़ती हैं, ऊपर सूर्य की किरणों के सहारे बादलों में, फिर बादलों के सहारे पहाड़ों पर, फिर गंगोत्तरी में गिर कर गंगा बनती हैं और दौड़ने लगती हैं सागर की ओर। गंगा ही नहीं, सभी नदियों की यही कथा है। इस कथा में, इस घटनाक्रम में विचित्रता तो है।

जो भी नदी सागर में स्वयं को गिरते देखती होगी, उसका घबरा जाना स्वाभाविक है। सागर में नदी का गिरना तो नदी का मिटना है, उसकी मृत्यु है। इस मिटने के क्षण में उसे पता ही नहीं होता कि सागर उसके लिए मृत्यु के साथ नया जीवन देने वाला गर्भ भी है; क्योंकि कल वही नदी फिर उठेगी ताजी होकर, नई होकर, युवा होकर। सागर में गिरते समय तक वह बूढ़ी हो गई थी, बासी हो गई थी। जमीन ने उसे जो भी गंदगी दी, सागर उसे छाँट देगा। फिर ताजा, शुद्ध, वाष्पीभूत हो सकेगी वह। फिर से उसकी जीवनयात्रा आरंभ होगी। जिस तरह से सागर नदी की मृत्यु भी है और जीवन भी, ठीक उसी तरह परमात्मा सृष्टि भी है और विनाश भी।

भयभीत अर्जुन इससे आगे भी कुछ ऐसा ही अनुभव कर रहे हैं—

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः॥ २९॥

►समूह साधना वर्ष◄

शब्द विग्रह= यथा, प्रदीप्तम्, ज्वलनम्, पतङ्गाः, विशन्ति, नाशाय, समृद्धवेगाः, तथा, एव, नाशाय, विशन्ति, लोकाः, तव, अपि, वक्त्राणि, समृद्धवेगाः।

शब्दार्थ= जैसे (**यथा**); पतंगे मोहवश (**पतङ्गाः**); नष्ट होने के लिए (**नाशाय**); प्रज्वलित (**प्रदीप्तम्**); अग्नि में (**ज्वलनम्**); अति वेग से दौड़ते हुए (**समृद्धवेगाः**); प्रवेश करते हैं (**विशन्ति**); वैसे (**तथा**); ही-ये (**एव**); सब लोग (**लोकाः**); भी (**अपि**); अपने नाश के लिए (**नाशाय**); आपके (**तव**); मुखों में (**वक्त्राणि**); अति वेग से दौड़ते हुए (**समृद्धवेगाः**); प्रवेश कर रहे हैं (**विशन्ति**)।

बड़ी अजीब-सी स्थिति होती है पतंगों की। दीया जल रहा है और पतंगा चक्कर लगाता है, उस दीए के और पास आता चला जाता है। उसके पंख जलने लगते हैं, तो भी वह हट नहीं पाता। दीए का आकर्षण उसे लगातार खींचता रहता है। लपट उसे छूने लगती है, इसके बाद भी वह पास आता जाता है और अंत में वह उस लपट में छलाँग लगाकर जल जाता है। मजे की बात तो इसमें यह है कि उस जलते हुए पतंगे को देखकर दूसरे पतंगे सीखते भी नहीं। वे भी उसी प्रकार चक्कर लगाते हैं, पास आते हैं उस प्रकाश के और जलने के लिए तत्पर हो जाते हैं।

अर्जुन कह रहे हैं कि कुछ ऐसे ही मैं देख रहा हूँ, इन सारे लोगों को आपके इस मृत्युरूपी मुख में जाते हुए। ये सभी भाग रहे हैं, अति वेग से और एकदूसरे से प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं, प्रतियोगिता कर रहे हैं, मृत्यु की ओर जाने के लिए। सभी भागे जा रहे हैं—आपके मुख की ओर, जहाँ केवल मौत है।

बड़ी विचित्रता है, मृत्यु से कतराने वाले, मृत्यु से दूर भागने वाले, मृत्यु से सदा स्वयं को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करने वाले महान योद्धा, बुद्धिमान, पंडित, ज्ञानी ये सभी मृत्यु की ओर भाग रहे हैं। वे इतने साजोसामान, इतनी शान के साथ जा रहे हैं, जैसे कि किसी उत्सव में भागीदार होने के लिए जा रहे हों। मृत्यु को ही इन्होंने अपनी गति बना रखा है।

इतना कहने के बाद अर्जुन आगे कहते हैं—

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं-
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो॥ ३०॥

शब्द विग्रह= लेलिह्यसे, ग्रसमानः, समन्तात्, लोकान्, समग्रान्, वदनैः, ज्वलद्भिः, तेजोभिः, आपूर्य, जगत्, समग्रम्, भासः, तव, उग्राः, प्रतपन्ति, विष्णो।

शब्दार्थ= और आप उन-संपूर्ण (**समग्रान्**); लोकों को (**लोकान्**); प्रज्वलित (**ज्वलद्भिः**); मुखों के द्वारा (**वदनैः**); ग्रास करते हुए (**ग्रसमानः**); सब ओर से (**समन्तात्**); बार-बार चाट रहे हैं (**लेलिह्यसे**); हे विष्णो (**विष्णो**); आपका (**तव**); उग्र (**उग्राः**); प्रकाश (**भासः**); संपूर्ण (**समग्रम्**); जगत को (**जगत्**); तेज के द्वारा (**तेजोभिः**); परिपूर्ण करके (**आपूर्य**); तपा रहा है (**प्रतपन्ति**)।

अर्जुन कह रहे हैं—"हे भगवन्! आप उन संपूर्ण लोकों को प्रज्वलित मुखों द्वारा ग्रसन करते हुए सब ओर से चाट रहे हैं।" बड़ा विचित्र एवं वीभत्स दृश्य देख रहे हैं अर्जुन। वह अपनी अनुभूति बता रहे हैं—आपकी अग्नि-लपटें सब तरफ से छू रही हैं लोकों को, और उनको लीले जा रही हैं। हे विष्णु! आपका उग्र प्रकाश संपूर्ण जगत को तेज के द्वारा परिपूर्ण करके तापायमान कर रहा है। सब तप रहे हैं, जल रहे हैं, भस्म हुए जा रहे हैं। इस दृश्य को देखते हुए मानने का मन नहीं होता कि यह जो उग्र रूप दीख रहा है, वह भगवान का ही रूप है। कई बार यह बात मन में आती है कि यह जरूर कोई भ्रम है, लोक प्रतीक होगा। यह भी हो सकता है कि भगवान यों ही कोई परीक्षा लेने के लिए डरा रहे हों।

अर्जुन की ही तरह हमारी अपनी भी स्थिति कुछ ऐसी ही है। हम सब जानना चाहते हैं परमात्मा को और उसकी प्रकृति से बचना चाहते हैं। यह सारा संसार उसकी प्रकृति ही तो है, उसी का खेल ही तो है। हम इससे बचना चाहते हैं, लेकिन उसे जानना चाहते हैं। हमारी अपनी भी तो यही प्रार्थना होती है, संसार से छुड़ाओ प्रभु। अपने पास बुला लो। कुछ विचित्र है यह प्रार्थना। इस संसार में, जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में भी तो वह पास हैं। इस सत्य की अनदेखी करके हम कहे जा रहे हैं—हटाओ इस भवसागर से, इस बंधन से और अपने गले लगा लो। अरे, इस बंधन में भी तो उसने ही गले लगाया है। हम चिल्ला रहे हैं—कब छूटेगी यह पत्नी? कब छूटेगा यह पति? कब दूर होगी यह परिस्थिति? यह छुटकारा कब होगा? हे प्रभु! पास बुलाओ। जैसे कि इस परिस्थिति में, पति अथवा पत्नी में वह उपस्थित नहीं है।

जो भगवान को उनके प्रत्येक रूप में पहचान लेता है, वही सही मायने में उन्हें जानता है। भगवान बुद्ध के बारे में एक गीत लिखा गया है। इस गीत में उस घटना का वर्णन है, जब बुद्ध वापस आए हैं। इस वापसी में उनकी पत्नी यशोधरा ने एक सवाल पूछा है—"जो तुम्हें जंगल में जाकर, मुझे छोड़कर मिला, क्या वह तुम्हें यहाँ नहीं मिल सकता था? मेरे पास रहकर क्या वह पाना संभव नहीं था?" यह सवाल बड़ा कीमती है। बहुमूल्य व अमूल्य है यह सवाल। इस गीत में कहा गया है कि सवाल सुनकर बुद्ध निरुत्तर खड़े रह गए हैं। सवाल के जवाब में बुद्ध झूठ नहीं बोल सकते। और सच तो यही है कि जो उन्होंने वन में रहकर पाया वह यहाँ यशोधरा के साथ रहकर भी पाया जा सकता था; क्योंकि जो है, वह तो हर जगह उपस्थित है। सर्वत्र उसका और उसका ही अस्तित्व है।

संसार से हटा ले प्रभु! यह प्रार्थना विचित्र-सी है; क्योंकि जो स्वयं संसार बन रहा है, स्वयं संसार बना रहा है, उसी से प्रार्थना कर रहे हैं कि हटा लो। यह प्रार्थना कुछ सही नहीं है। कहने को तो अर्जुन कह रहे हैं कि हे प्रभु! मैं आपकी प्रवृत्ति नहीं, आपका तत्त्व जानना चाहता हूँ, लेकिन उनके इस कथन में उनका स्वयं से विरोध भी छिपा हुआ है। एक तरफ वह कह रहे हैं कि हटा लो अपना यह उग्र रूप और प्रसन्न हो जाओ। प्रसन्नता भी तो प्रवृत्ति ही है, ठीक उसी तरह से, जैसे उग्रता एक प्रवृत्ति है। जैसे प्रसन्नता कर्म है, वैसे ही उग्रता कर्म है। जैसे मृत्यु कर्म है, वैसे जीवन भी एक कर्म है।

इस बात को या तो हम समझते हैं अथवा समझकर अपने लिए सुख का, प्रसन्नता का, सुखमय जीवन का चयन करना चाहते हैं। हालाँकि इस चयन के द्वारा परमात्मा को पहचाना नहीं जा सकता। परमात्मा को पहचानना है तो उसे हर रूप में पहचानना होगा। जीवन में, मृत्यु में, सुख में, दु:ख में सर्वत्र वही है। उसके सिवाय और कुछ भी नहीं। यह बात जब समझ में आ सकेगी, केवल तभी उसे हम जान सकेंगे, पहचान सकेंगे। उसे अपना कह सकेंगे, उसे अपना सकेंगे। जो हर परिस्थिति में, हर प्रवृत्ति में उसे जान लेता है, वही उसे जान लेता है। ज्ञान यही है, बोध यही है। यही विवेक का विस्तार है। प्रत्येक परिस्थिति में, प्रत्येक घटनाक्रम में परमात्मा हमें आनंदित होने का अवसर प्रदान कर रहा है। उसे न पहचानने के कारण बार-बार हम यह अवसर गँवाते जा रहे हैं। ✿

एक दिन इंद्रियों में इस बात को लेकर ठन गई कि कौन ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। मस्तिष्क ने सबसे पहले बोलना प्रारंभ किया और बोला कि यदि मस्तिष्क काम न करे तो मनुष्य पशु के समान हो जाएगा। उसकी बात बीच में काटते हुए हृदय बोला कि यदि हृदय धड़कना बंद कर दे तो पशु होना भी किसी काम का नहीं। हाथ-पैर कहाँ पीछे रहने वाले थे—वे उसी व्यग्रता के साथ बोले कि हाथ-पैर न हों तो धड़कते हृदय और चलते मस्तिष्क का रहना बिलकुल व्यर्थ है। एक स्थान पर बैठे रहें, पर कार्य कोई न कर पाएँ, ऐसा जीवन भी कोई जीवन है! वाद-विवाद का कोई निष्कर्ष न निकलता देख उन्होंने भगवान से गुहार लगाई। विधाता के यहाँ गोष्ठी का आयोजन किया गया। सभी अंग एवं इंद्रियाँ अपने-अपने पक्ष की बातें लेकर वहाँ पहुँचे और उनको प्रस्तुत करने के बाद विधाता की ओर आशा भरी निगाहों से देखने लगे। विधाता मुस्कराए और बोले—"तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तो तुम्हें तुम्हारी बहस में ही मिल गया था।" अंग एवं इंद्रियाँ यह सुनकर आश्चर्य से बोले—"ऐसा कब हुआ था प्रभु?" विधाता बोले—"जब तुम अपने-अपने पक्ष रख रहे थे तो ये नहीं समझे कि तुममें से एक के बिना भी शरीर का उपयोग क्या है? तुम सब के साथ रहने पर ही तो वह उपयोगी है, एकांगी तो वह किसी काम का नहीं।" सबकी समझ में आ गया कि महत्त्व एकता से है, व्यर्थ के एकांगी अहंकार से नहीं।

साधकों के लिए आह्वान



विगत अंक में आपने पढ़ा कि वर्ष १९६१ की गायत्री जयंती के दिन परमपूज्य गुरुदेव ने अज्ञातवास से लौटने के उपरांत पहला उद्‌बोधन दिया। उद्‌बोधन का मुख्य उद्‌देश्य सबको उद्वेलित कर रहे अष्टग्रही योग के आतंक से संबंधित चिंताओं का निराकरण करना था। पूज्य गुरुदेव ने इस क्रम में आगे बताया कि ऐसे दुर्लभ योगों के समय गायत्री की उच्चस्तरीय साधनाओं की आवश्यकता पड़ती है इसीलिए सभी को गायत्री की पंचकोशी साधना करने की आवश्यकता है। इन दिनों अथर्ववेद भाष्य प्रकाशित होने के साथ ही पूज्य गुरुदेव का आर्ष वाङ्‌मय के प्रकाशन का संकल्प भी पूर्ण हो चुका था। धीरे-धीरे पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी के मथुरा से प्रस्थान के दिनों की भी भूमिका बनने लगी थी तथा इसी के अनुरूप गुरुसत्ता ने अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों का प्रबंधन प्रारंभ कर दिया था। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण..........

प्राणाकर्षण प्राणायाम की प्रक्रिया आचार्यश्री ने उस गोष्ठी में ही समझा दी। कार्यकर्त्ताओं को पालथी मारकर बैठने के लिए कहा। उन्हें निर्देश दिया कि वे मन में प्रसन्नता का भाव लाएँ और प्रतीति जगाएँ कि अपने आस-पास सफेद बादलों की तरह चारों ओर प्राण लहरा रहा है। नाक से गहरी साँस लें और भावना करें कि चारों ओर लहरा रहा प्राण अपने भीतर प्रवेश कर रहा है। फेफड़ों में, पेट में और अंग-प्रत्यंगों में वह प्राण समा रहा है।

शरीर का रेशा-रेशा उस प्राण को पीकर पुष्ट हो रहा है। श्वास भीतर खींच लेने के बाद उसे भीतर ही रोके रहें और अनुभव करें कि सूखी मिट्टी पानी पीकर जिस तरह गीली होती और एक आकार लेने लगती है, उसी तरह अपना अस्तित्व भी भीग रहा है। यह तरलता व्यक्तित्व को नया रूप देने के लिए तैयार कर रही है। गीली मिट्टी जिस तरह अभीष्ट साँचे में ढलने के लिए तैयार होती है। उसी तरह अपना आपा भी इष्टदेव के साये में ढलने के लिए सन्नद्ध हो रहा है।

जितनी देर रोकी जा सके, उतनी देर साँस रोकने के बाद आचार्यश्री ने कार्यकर्त्ताओं को धीरे-धीरे साँस बाहर निकालने के लिए कहा। इस रेचक के समय अपने भीतर से विकारों और मल विक्षेपों के निष्कासन की भावना करने के लिए कहा गया। विकार बहुत दूर तक चले गए हैं और उन्हें वापस नहीं आने देने के लिए द्वार बंद कर देना है। इस प्रक्रिया को आचार्यश्री ने प्राणाकर्षण प्राणायाम कहा था। संध्या आरंभ करने से पहले इस तरह के तीन प्राणायाम करने थे।

गायत्री तपोभूमि के बाहर शाखाओं में काम कर रहे साधकों को यह साधना दीवाली बाद आरंभ करनी थी। उनके लिए साधना विधान १९६१ के अक्टूबर माह में भेजा गया। इससे पहले साधकों से उनके बारे में आवश्यक विवरण मँगा लिए गए थे। पंचकोशीय साधना में जिन साधकों ने उत्साह दिखाया, उनके लिए अलग से मार्गदर्शन भेजा गया। उन साधकों की स्थिति का विवरण भी अलग रखा गया। अखण्ड ज्योति संस्थान में ही ऐसे साधकों की पंजी बनाई गई। वह पंजी माताजी के संरक्षण में रहती थी।

असली संकट आगे

उस वर्ष एक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय घटना हुई। गोवा, दमन और दीव पुर्तगाली शासन से मुक्त हुए और उनका भारत के संघराज्य में विधिवत् विलय हुआ। इसके लिए कोई बड़ी कार्रवाई नहीं करनी पड़ी। दिसंबर, १९६१ के तीसरे सप्ताह में भारतीय सुरक्षा बलों ने गोवा में प्रवेश

▶समूह साधना वर्ष◀

किया और वहाँ तिरंगा फहरा दिया। हैदराबाद रियासत के विलय के बाद यह बड़ी कार्रवाई थी। प्राचीन विवरणों में गोपपुरम्, गोवापुरी या गोमंतक के नाम से उल्लेखित इस क्षेत्र को राष्ट्र की मुख्यधारा में मिलाने के लिए महाराष्ट्र और कर्नाटक में वर्षों से आंदोलन चल रहा था। सत्याग्रहियों के जत्थे गोवा में जाकर गिरफ्तारियाँ दे रहे थे। गोवा को मुक्त कराने के लिए छोटी-मोटी सैनिक कार्रवाई की संभावना जुलाई, अगस्त से ही व्यक्त की जाने लगी थी।

स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों में आचार्यश्री के साथी-सहयोगी रहे कांग्रेसी नेता जगनप्रसाद रावत ने गायत्री तपोभूमि में चर्चा के दौरान इस बारे में चर्चा की थी। आचार्यश्री ने उस चर्चा में सहज ढंग से कहा था कि गोवा तो आसानी से मुक्त हो जाएगा। आप उस पर गर्व भी कर सकेंगे, लेकिन असली संकट आगे है। वह वर्ष देश और सरकार के लिए अग्नि परीक्षा का वर्ष होगा।

रावत जी आचार्यश्री के कथन को पहली ही बार में पकड़ नहीं पाए। उन्होंने आशय स्पष्ट करने के लिए कहा तो आचार्यश्री ने दो साल पहले तिब्बत में चीन द्वारा मचाए गए उत्पीड़न और आतंक का जिक्र किया। जागरूक पाठकों को याद होना चाहिए कि समूचे तिब्बत को निगल डालने के क्रम में ही चीन ने जो अत्याचार किए, उनसे अपना बचाव करते हुए हजारों तिब्बती अपने प्रमुख नेता दलाईलामा के साथ भारत आ गए। भारत ने इसका विरोध किया। चीन ने उस विरोध को अनसुना करते हुए भारत की इकतीस हजार वर्ग किलोमीटर जमीन पर भी कब्जा कर लिया। गोवा की चर्चा के दौरान आचार्यश्री ने रावत जी के सामने यह पक्ष रखा था।

दिसंबर, १९६१ में गोवा, दमन और दीव का भारत में आत्यंतिक विलय हो गया। इस पर देश भर में बधाइयाँ भेजी गईं। खुशियाँ मनाई गईं। आचार्यश्री ने भी भारत सरकार को बधाई और पत्र में लिखा कि उसे भविष्य में आने वाले खतरों से सावधान रहना चाहिए। २० दिसंबर, १९६१ को आकाशवाणी और स्थानीय समाचारपत्रों के संवाददाताओं ने गोवा की फतह के बारे में आचार्यश्री की टिप्पणी माँगी। उन्होंने इस विजय को स्तुत्य बताया। साथ में यह भी कहा कि पड़ोसी देश ने हमारी जो भूमि दो वर्ष पहले हथिया ली है, उसे मुक्त कराने का भी ध्यान रखें। हमें सतर्क रहना चाहिए; क्योंकि आने वाला समय हमारे लिए सामरिक दृष्टि से चुनौतीपूर्ण हो सकता है। यह टिप्पणी आकाशवाणी ने २० दिसंबर, १९६१ के कार्यक्रम में प्रसारित की थी और 'उजाला,' 'सैनिक,' 'जागरण,' 'राष्ट्रदूत' आदि अखबारों ने भी इसे प्रकाशित किया था।

एक संवाददाता ने पूछ भी लिया था कि आने वाली विपदाओं का कारण क्या फरवरी, १९६२ में होने वाला अष्टग्रही योग है। आचार्यश्री ने कहा था कि यह योग नियति के जिस विधान के अंतर्गत आ रहा है, उसी नियति के एक अन्य विधान के कारण हमें राष्ट्रीय संकट में भी फँसना पड़ सकता है। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि नियति के अन्य विधान से उनका आशय पहले की गई कुछ गंभीर राष्ट्रीय भूलें हैं।

अष्टग्रही योग के बारे में जिस संवाददाता ने आशंका जताई थी, वह भी उसके आतंक से परेशान था। राज गोपाल वर्मा नामक इस संवाददाता ने इस विषय पर आचार्यश्री का एक इंटरव्यू लिया। आचार्यश्री ने स्पष्ट कहा था कि जिन चार दिनों में अष्टग्रही योग आने वाला है, उसके मध्य बिंदु ५ फरवरी के दिन प्रलय जैसी आशंका से जरा भी विचलित नहीं होना चाहिए। ज्योतिर्विद भले ही कह रहे हों इस योग से महाविनाश होगा, लेकिन हमारा मानना है कि इस कुयोग से सर्वनाश जैसा अनर्थ नहीं होने वाला।

लोगों को आश्वस्त रहना चाहिए कि योग के पचीस दिनों में कोई अनहोनी नहीं होगी। ये दिन भी साधारण दिनों की भाँति शांति से बीत जाएँगे। ग्रहयोगों से इतने ही संकेत मिलते हैं कि अगले दस वर्षों में पूरी दुनिया में आश्चर्यजनक बदलाव आएँगे। संसार के प्रत्येक भाग में और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कठिनाइयाँ बढ़ेंगी। इन परिवर्तनों को शुभ की तैयारी के रूप में भी देखना चाहिए।

अष्टग्रही योग के आतंक को या भय को निष्प्रभावी करने के लिए आचार्यश्री ने जगह-जगह साधना-उपासना के कार्यक्रम चलाने के लिए कहा। उनकी इस अपील को लोगों ने सुना और अपनाया, फिर भी लोगों में भय तो था ही। १९६२ का फरवरी मास आते-आते वह भय बढ़ने लगा। जनवरी का तीसरा सप्ताह लगते ही वातावरण में उसके चिह्न विकराल होने लगे थे। यह योग १९ जनवरी से शुरू होना था और १२ फरवरी, ६२ को समाप्त होना था। इस अवधि में छह ग्रह मकर राशि में

आने थे। २४ जनवरी को सात और २ फरवरी को आठ ग्रह एक ही राशि में आने थे। यह स्थिति ५ फरवरी तक रहनी थी। फिर क्रम से एक-एक ग्रह अलग होते जाने थे। जनवरी आते-आते लोगों में भय का माहौल गहराने लगा, आत्महत्या करने वालों की संख्या बढ़ने लगी तो आचार्यश्री ने चौबीस दिन के लिए तपोभूमि में भी जप, यज्ञ और अनुष्ठान के क्रियाकलाप शुरू कराए। इन प्रयत्नों की सूचना मथुरा से बाहर नहीं जा सकी। स्थानीय समाचार पत्रों में एतद्विषयक समाचार छपे। उन्हें पढ़कर आस-पास शहरों और कसबों से लोग तपोभूमि आने लगे।

१९ जनवरी से १२ फरवरी तक चले जप-अनुष्ठान के दिनों में ही वसंत पंचमी भी आई। अष्टग्रही योग मौनी अमावस्या के दिन निकल गया था। वह दिन बीत जाने के बाद लोगों ने चैन की साँस ली थी। वह घड़ी तो बीत गई, लेकिन भय के वातावरण ने अनर्थ कर ही दिया।

पाँच फरवरी—मौनी अमावस्या बीत जाने के अगले ही दिन व्रजमंडल के संतों और मथुरा-वृंदावन के प्रतिष्ठित नागरिकों ने आचार्यश्री से संपर्क किया। अकेले या तीन चार के समूह में छह फरवरी को तपोभूमि में इन लोगों का ताँता लगा रहा। वे चैन की साँस लेते हुए प्रतीत हो रहे थे । आचार्यश्री ने उन लोगों से यही बात कही कि अष्टग्रही योग के परिणाम अभी नहीं, आने वाले वर्षों में दिखाई देंगे। किसी भी तरह के कुयोगों के परिणाम दुनिया को गेंद की तरह उछाल देने या पके हुए फल को तोड़कर पीस डालने जैसे कतई नहीं होते। सत्परिणाम भी तुरंत सामने नहीं आते। उनके लिए भी प्रतीक्षा करनी पड़ती है; शायद ज्यादा ही प्रतीक्षा करनी पड़ती है; क्योंकि सृजन की प्रक्रिया ध्वंस से ज्यादा जटिल और दीर्घ है। इस कारण भी उसके लिए कुछ ज्यादा प्रतीक्षा करना पड़ सकती है।

मूढ़तावादी मोहग्रस्त असुर वर्ग और लोक-मंगल की भूमिका संपादित करने में संलग्न देव वर्ग इन दोनों को ही अगले दिनों अपनी रीति-नीति की श्रेष्ठता-निकृष्टता प्रस्तुत करने का अवसर मिलेगा। दोनों गतिविधियों के सत्परिणाम और दुष्परिणाम उपस्थित होंगे और उनको देख-समझकर भावी पीढ़ी को यह निश्चय करने का अवसर मिलेगा कि उपरोक्त दोनों पद्धतियों में से कौन उपयुक्त और कौन अनुपयुक्त है। इनमें से किसे ग्रहण किया जाए और किसे त्यागा जाए।

अगले दिनों हमें इनमें से किसी एक वर्ग में सम्मिलित होना होगा, बीच में नहीं रहा जा सकता। महाकाल के विधान में प्रतिरोध प्रस्तुत करने वाले मूढ़तावादी लोगों में सम्मिलित रहना हो तो खुशी-खुशी वैसा करें और करालकाल-दंड के प्रहार सहने को तैयार रहें। यदि यह अभीष्ट न हो तो ईश्वरीय प्रयोजन की पूर्ति में सहायक बनकर चलना ही उचित है। तब हमें अपनी गतिविधियाँ अभी से बदलनी होंगी और उस पुण्य-प्रक्रिया को अपनाना होगा, जिसमें आत्मकल्याण और विश्वकल्याण, दोनों का ही समान रूप से समन्वय हो।

—परमपूज्य गुरुदेव

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी — ४

लोक-शिक्षकों के जीवन का लक्ष्य एवं उद्देश्य



परमपूज्य गुरुदेव अपने इस उद्बोधन में भावी लोक-शिक्षकों को संबोधित करते हुए कहते हैं कि लोक-शिक्षकों के जीवन का एकमात्र लक्ष्य और उद्देश्य अपने जीवन से अज्ञान और अंधकार का निवारण करना तथा स्वयं को लोभ और मोह के चंगुल से मुक्त करना है। पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि इस सोच को आचरण में उतारे बिना दूसरों के जीवन को बदल पाना संभव नहीं है। मात्र व्याख्यान देने से लोगों को आकर्षित तो किया जा सकता है, परंतु उनके व्यक्तित्व में कोई स्थायी परिवर्तन नहीं लाया जा सकता है। जीवन में त्याग और बलिदान का प्रवेश, चिंतन-चरित्र और व्यवहार में प्रामाणिकता लाने का ही नाम अध्यात्म है। जिनके जीवन में अध्यात्म समाविष्ट हो जाता है, वे ही लोक-शिक्षक बनने का दायित्व निभा पाते हैं। युगऋषि कहते हैं कि यही उनने अपने जीवन में किया और इसी कारण लाखों के जीवन को प्रभावित कर पाने में सक्षम हो सके और यही करना हम सबका कर्त्तव्य भी है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

मैंने बोया और मैंने काटा

लेकिन मित्रो! अभी मैं देखना चाहता हूँ कि लोभ को त्यागने के बाद आदमी के भीतर जो मैग्नेट पैदा होता है, जो कशिश पैदा होती है, वह मेरे भीतर पैदा हुआ कि नहीं हुआ? वह अभी भी जिंदा है कि नहीं? अभी आप मुझे अपने आप का इम्तहान लेने दीजिए। मैंने किसी से नहीं माँगा। उस हजार कुंडीय यज्ञ में चालीस लाख रुपया खरच हुआ था। वह सारे का सारा पूरा हो गया। मित्रो! अभी भी जो काम करता रहता हूँ, बिना माँगे ही मेरे काम चलते रहते हैं। अभी देखिए, ढाई वर्ष हुआ है। मैं समझता हूँ कि इस ढाई वर्ष में दो-ढाई लाख रुपये से कम खरच नहीं हुआ। मैं देखता हूँ कि वह मैग्नेट और वह कशिश लोगों के भीतर है कि नहीं? प्रभाव डालने की क्षमता है कि नहीं? और लोगों को हिला देने वाली और लोगों का पैसा जेब में से निकाल देने वाली कशिश है कि नहीं, मैं देखूँ तो सही।

हाँ मित्रो! है। क्यों है? क्योंकि मैंने बोया है। किसको बोया है? अपने लोभ को बोया है और उसका जो फल मिला वह लोगों से इस बात को मंजूर करने के लिए विवश करने में सफल रहा कि हम भी अपने लोभ का त्याग करने के लिए तैयार हों और लोभ का त्याग करेंगे। आपको भी मैंने इसके लिए तैयार कर लिया। कितनों को तैयार कर लिया और कितनों को तैयार करने वाला हूँ? भगवान बुद्ध ऐसा करने में समर्थ हो गए थे। उन्होंने असंख्य मनुष्यों को उनकी भरी जवानी में अपना घर छोड़ने के लिए, अपनी खुशहाली छोड़ने के लिए तैयार कर लिया था। उनकी जिंदगी में ही ढाई लाख मनुष्य इस तरीके से तैयार हो गए थे कि भिक्षु और भिक्षुणियों के रूप में नौजवान—भरी जवानी वाले उनके कहने की वजह से क्यों तैयार नहीं होता? इसलिए नहीं होता कि बुद्ध के तरीके से त्याग का माद्दा और कशिश उनके भीतर हमारी वाणी से पैदा नहीं होती। बुद्ध भगवान ने पैदा किया था। वे जहाँ कहीं भी चले गए, जिस जगह भी चले गए, न जाने कितने लोग उनके पीछे पड़ते हुए चले गए। विवेकानंद जहाँ कहीं भी गए थे, सिस्टर निवेदिता से लेकर कितने आदमी काम

►समूह साधना वर्ष◄

करते हुए चले गए। गांधी जी के कहने के मुताबिक कितने आदमी जेल चले गए थे।

लोक-शिक्षक को पहला शिक्षण—वैरागी बनें

मित्रो! यह कशिश आपको भी पैदा करनी है। आपको व्याख्यान करने की कला नहीं सीखनी है, पंडितों की कला नहीं सीखनी है। इस कला को सीख करके अगर आपका यह ख्याल हो कि हम समाज की बहुत बड़ी सेवा कर सकते हैं, या जनता की वह सेवा कर सकते हैं, जिसके लिए हम आपको आगे भेजने वाले हैं, यह नामुमकिन है। इसलिए पहली वाली योग्यता, पहला वाला शिक्षण, पहला वाला क्रियाकलाप जो आपको पूरा करना है, वह यह है कि पीला वस्त्र पहनने के बाद में आप अपने जीवन की रीति-नीति को बदल दें। इसके लिए आप कब और कितना कदम उठा सकते हैं, मैं नहीं जानता। आपकी परिस्थितियाँ क्या हैं, मुझे नहीं मालूम, लेकिन मैं यह जानना और समझना चाहूँगा कि आपमें इस आध्यात्मिक जीवन के अंदर प्रवेश करने की क्षमता हो, तो आपको वैरागी बनना पड़ेगा।

मित्रो! वैरागी वे आदमी नहीं होते, जो हाथ में चिमटा लेते हैं, कमंडलु धारण करते हैं, तिलक लगाते हैं और माला पहनते हैं, वरन वैरागी वे होते हैं, जो अपना दृष्टिकोण बिलकुल साफ कर लेते हैं, शीशे की तरह साफ कर लेते हैं। पैसे को कमाना ही नहीं, वरन उसको खरच कैसे करना चाहिए? हमारे पास जो कुछ है, उसको हमको कैसे खरच करना है? अब आपको कमाने की उतनी ज्यादा चिंता नहीं करनी चाहिए। अब आपको यह चिंता करनी है कि हमको खरच कम कैसे करना है? आपके जो भी घरेलू खरच हैं, क्या उनमें किसी प्रकार की कमी करने की गुंजाइश है? अगर कमी करने की गुंजाइश हो, तो आपको फौरन कमी कर देनी चाहिए और आपको जान-बूझकर संत का जीवन ग्रहण कर लेना चाहिए। आपके व्यक्तिगत खरचों में लग्जरी का माद्दा जहाँ कहीं भी है, आपको उन खरचों को तुरंत काट डालना चाहिए और आपको अपने घर में ही रहकर संत जैसा जीवन जीना शुरू कर देना चाहिए।

संत गरीब होते हैं, दरिद्र नहीं

मित्रो! संत गरीब होते हैं, कंगाल नहीं होते। कंगाल और गरीब आदमी में जमीन-आसमान का फरक है। कंगाल वो हैं, जिनको हम दरिद्र कहते हैं। गरीब उनको कहते हैं, जो जान-बूझकर स्वेच्छापूर्वक कम खरच में किफायतशीलता से अपना जीवनयापन शुरू करते हैं। किस तरीके से आप अपना जीवनयापन शुरू करेंगे? आपके पास अनावश्यक धन कहीं से संगृहीत हो गया है, तो आप उसको फोड़े के तरीके से फोड़कर निकाल दें। यह आपको बड़ा कष्ट देगा और आपकी हड्डियों को गला देगा। अनावश्यक धन संचय संत को शोभा नहीं देता। जहाँ कहीं भी आपके फोड़ा हो गया हो, उसको चीरा लगवा दीजिए और मवाद को निकाल दीजिए; अन्यथा वह आपको सड़ा देगा; आपके परलोक को सड़ा देगा; आपकी बीबी को सड़ा देगा; आपके बच्चों को सड़ा देगा; आपके खानदान वालों को सड़ा देगा; सबको सड़ा देगा, आप यकीन रखना। आपने अनावश्यक दौलत इकट्ठी करके रखी हो तो इसको निकाल देना और फोड़े के तरीके से फोड़कर खतम कर देना।

मित्रो! जनता का शिक्षण करने के लिए आपको जो तप सिखाता हूँ, योगाभ्यास सिखाता हूँ, वह यहाँ से आरंभ करता हूँ। असली तप और असली योगाभ्यास वही है। आप तो बार-बार यही पूछते हैं कि महाराज जी! नाक में से रस्सी निकालना सिखा दीजिए। कान में घंटी बजाना सिखा दीजिए और 'जय शिव ओंकारा' सिखा दीजिए और गायत्री का जप करना सिखा दीजिए। बेटे! मुझसे खेल-खिलौना क्यों पूछता है? जो असली योगाभ्यास है, उसे क्यों नहीं पूछता? असली तपश्चर्या क्यों नहीं सीखता, जिसमें तुझको पसीना आएगा, और जिसमें तेरी ईमानदारी का इम्तहान लिया जाएगा। वहाँ नहीं घुसना चाहता और यह खेल-खिलौना करना चाहता है। नहीं गुरुजी! हम तो ऐसा ही करेंगे। नाक में से पानी पी लिया करेंगे और मुँह में से निकाल दिया करेंगे। बेटे! यह तो अपने आप हो जाता है, इसमें कौन-सी बड़ी बात है? नहीं महाराज जी! हमको नाक में से पानी निकालना सिखाइए। भगवान से मिलना सिखाइए। बिलकुल पागल आदमी है।

लोभ-मोह से मुक्ति पर मिलते हैं भगवान

मित्रो! नाक में कोई भगवान नहीं रहता है। नहीं साहब! नाक में से प्राणायाम करना बता दीजिए, भगवान मिल जाएगा। बेटे! तू बिलकुल पागल आदमी है। नाक में तेरा भगवान रहा होता, तो चल मैं यह भी बता देता, पर तेरी नाक में तो गंदगी भरी पड़ी है। तुझे कभी जुकाम हो जाए, छींक आ जाए, तो देख लेना, भगवान है कहीं? कहीं नहीं है, केवल कफ है। जुकाम हो जाने पर ढेरों

कफ निकलता है, वही तुझे मिल जाएगा। नाक में से बहुत प्राणायाम करेंगे, तो भी भगवान नहीं मिलेगा? नहीं बेटे! भगवान नहीं मिलेगा। भगवान कब मिलेगा? कहाँ मिलेगा? भगवान वहाँ मिलेगा, जबकि हम दो इम्तहानों में पास होते चले जाएँगे। कौन-कौन से? लोभ और मोह के इम्तहान में। आपकी सारी शक्ति यही दो राक्षस खा जाते हैं। वे कुछ भी बचने नहीं देते।

मित्रो! भगवान का भजन करने का मन आपका कहाँ है? मन हो तो न, भगवान के भजन में लगे। आपके पास जब मन ही नहीं है, तो भगवान के भजन में कैसे लगेगा। मन तो आपका गुलाम हो गया है, गिरवी रखा हुआ है, लगेगा कैसे? लगेगा किसके पास? आपका भगवान कौन है? कोई आपका रिश्तेदार है भगवान? साला है? भगवान आपका कोई नहीं है। भगवान तो आपके लिए वह साधन है, जिससे आप अपना उल्लू सीधा करा लें। आपके लिए वह शिकार खेलने की मछली जैसे है। आप उसको पकड़ लें; उससे वैकुंठ ले लें; स्वर्ग ले लें; उससे मुक्ति ले लें; उससे मनोकामना पूरी करा लें; उससे चाहे जो ले लें। भगवान आपका कौन है? भगवान आपका 'ख्वाहमख्वाह' है। उसके लिए आपका मन कैसे लग सकता है? आपका मन नहीं लग सकता।

इसलिए मित्रो! आपको अपने भीतर कशिश पैदा करनी है और यह कशिश मोह को त्याग करके पैदा करनी है। मित्रो! जब हम चलने लगे तो हमारे पास अस्सी बीघा जमीन बाकी रह गई थी। हमारे खानदान वालों ने कहा कि अब तो आप हिमालय जा रहे हैं। क्या हमेशा के लिए जा रहे हैं? हाँ, अब नहीं आएँगे? हाँ। तो फिर अस्सी बीघे जमीन की लिखा-पढ़ी कर जाइए, हमको और अपने घर वालों को, खानदान वालों को दे जाइए। मैंने कहा कि यह गलती मैं नहीं कर सकता। अगर मेरे खानदान वाले, मेरे घर वाले, मेरे बेटी-बेटे अपाहिज होते, लूले होते, लँगड़े होते, काने होते, जिनसे चला नहीं जाता, तो मैं इनको दे जाता। अगर बच्चे छोटे होते और जिनके पालन करने की जिम्मेदारी और कर्त्तव्य मेरा होता, तो मैं इनको दे जाता। मेरे दोनों बच्चे बड़े हो गए हैं, एम० ए० पास कर लिया है। काम से लग गए हैं। इनकी शादियाँ हो गई हैं। अब इनका कोई हक मेरे ऊपर नहीं रहा और कोई ड्यू नहीं रहा। अब इनका कोई अधिकार नहीं रहा।

मित्रो! जो चीजें मेरे बाप-दादों ने और मेरे बुजुर्गों ने और मैंने कमाईं, जिस पैसे को लोक-मंगल के लिए समाज को देकर मैं कितना लाभ उठा सकता हूँ, वह मैं आपको दे दूँगा? मैं तो नहीं देता। खानदान वालों ने, साले और रिश्तेदारों ने मुझे धमकी दी। मैंने कहा कि कानून तो चालाकों का बनाया हुआ है, चोरों का बनाया हुआ है। बाप की कमाई को बेटे को खाना चाहिए, यह चोरों का कानून है और चालाकों का कानून है। क्यों खाना चाहिए। मैं गवर्नमेंट के इस बात के पक्ष में हूँ और सही समझता हूँ कि उसे मृत्यु-टैक्स वसूल करना चाहिए। मैं तो यह कहता हूँ कि ऐसा टैक्स वसूल करना चाहिए

प्रतिशोध अपनी ही ज्वाला में जलते हुए धैर्य से बोला—"तुम मेरे साथ नहीं रहा करो। तुम्हारे जैसे शांत व्यक्ति के साथ रहने से मेरी शान घटती है। मैं तो जैसे को तैसा करने पर विश्वास रखता हूँ।" धैर्य ने शांति से प्रतिशोध का साथ छोड़ दिया। एकाकी प्रतिशोध तब से अधीरतापूर्वक सारे संसार में विचरण कर रहा है और अपना एवं समाज का अहित कर रहा है।

कि जिसके नाबालिग छोटे बच्चे रह जाएँ, उनकी तो बात अलग है। उनका तो उस हिसाब से पढ़ने-लिखने का प्रबंध करना चाहिए। इसके बाद में जो कुछ भी बच जाता है, सबका सब जब्त कर लेना चाहिए।

लोक-मंगल के लिए बने कानून

मित्रो! अगर मुझे हुकूमत सौंप दी जाए, तो मैं यही कहूँगा कि न्याय यही है, इंसाफ यही है कि जो आदमी मर गया है और जिसके ऊपर कोई जिम्मेदारी नहीं है और वह संपत्ति को अपनी औलाद के लिए छोड़कर मर गया है, तो उसका एक पैसा मत दो। उसका सारा पैसा जब्त कर लो। वह सारा पैसा गवर्नमेंट को दे देना चाहिए।

उसकी औलाद को कानी कौड़ी नहीं मिलनी चाहिए, पर मैं क्या कर सकता हूँ, मेरा कानून तो चलेगा नहीं। लेकिन अगर इंसाफ की बात हो, तो वह यही है कि वह सारा का सारा धन लोक-मंगल के लिए खरच करना चाहिए और समाज के लिए खरच होना चाहिए।

मित्रो! अगर आपको अपने अंदर कशिश उत्पन्न करनी हो, तो वहाँ से करना चाहिए, जहाँ से आपके लोभ और मोह पर अंकुश लगे। जैसा कि मैंने आपको बताया था कि मेरे पास जो अस्सी बीघे जमीन थी, उसके लिए मेरे खानदान वाले एक ओर बैठे रहे और हरेक आदमी नाराज बैठा रहा, गुस्से में भरा बैठा रहा। मैंने हरेक की ओर आँख उठाकर देखा और कहा कि आपकी नाराजगी आपको मुबारक, मैं आपकी नाराजगी से पिघल नहीं सकता। आप मेरी संतान हैं और मुझे संतान के लिए फर्जों और उत्तरदायित्वों और कर्त्तव्यों का ज्ञान है। अपने कर्त्तव्यों, फर्जों और उत्तरदायित्वों को पूरा करने के अलावा आपको प्रसन्न करने के लिए, आपको खुश करने के लिए, आपकी खुशामद करने के लिए और औलाद की मरजी के मुताबिक चलने के लिए मैं कुछ कर सकता हूँ? मैं कतई नहीं करूँगा। आप सब नाराज हो जाएँ, तो भी नहीं। लोग अभी तक नाराज बैठे हुए हैं। कौन? जिनको सपने में भी रास्ता नहीं मिला। मैंने तो अस्सी बीघे जमीन हाईस्कूल के नाम कर दी। अब वहाँ माता जी के नाम का हाईस्कूल बना हुआ है। कॉलेज बना हुआ है। उसी स्कूल में हरिजन गरीब घरों की लड़कियों ने इंटरमीडिएट पास कर लिया। जबकि हमको अपने गाँव से सात मील दूर मिडिल पढ़ने के लिए जाना पड़ता था।

मित्रो! हमारा छोटा-सा गाँव है और छोटे से गाँव में केवल प्राइमरी स्कूल की व्यवस्था थी। मिडिल गाँव से बाहर जाकर पास करना पड़ता था। सोमवार के दिन सवेरे सात मील दूर जाते थे। सवेरे चार बजे उठकर नौ बजे पहुँचते थे। शनिवार के दिन फिर शाम को चार बजे चलते थे और रात को आठ-नौ बजे घर आ पाते थे। हमने सारी की सारी मिडिल की पढ़ाई वहाँ पढ़ी थी। हमारे गाँव के सारे लोगों में से दो-पाँच लड़के ही थे, जिन्होंने मिडिल तक शिक्षा पाई थी। बाकी सारे के सारे बच्चे प्राइमरी पढ़ने के बाद में स्कूल छोड़ गए थे। अब उसी गाँव में मैट्रिक और इंटरमीडिएट कॉलेज हैं, जहाँ पचास-साठ बच्चियाँ तो हर साल मैट्रिक कर ही लेती हैं। लड़कों का तो कहना ही क्या? लड़कों में तो शायद ही कोई ऐसा बचा होगा, जिसने मैट्रिक पास न कर लिया हो, बी० ए० पास न कर लिया हो। अब तो कॉलेज की व्यवस्था हो रही है। शिक्षा का प्रसार न केवल आवश्यक है, वरन अनिवार्य भी है। लोग अभी भी कहते हैं कि गुरुजी का अकेला बेटा नहीं है, वरन सारा गाँव उनका बेटा है। उनकी अकेली बेटी नहीं है, वरन सारे गाँव की बेटियाँ उनकी बेटियाँ हैं, जिनको पढ़ाने-लिखाने आदि की सारी व्यवस्था करने का इंतजाम कर दिया।

हमारा प्यार है इस परिवार का आधार

मित्रो! यह क्या है? यह लोभ और मोह है, जो मैंने अपने छोटे से खानदान में से खींचा और छोटे से खानदान

राहगीर ने पत्थर मारा तो आम के वृक्ष से कई पके हुए आम नीचे आ गिरे। राहगीर उन्हें उठाकर अपनी राह चल दिया। यह दृश्य देख रहे आसमान ने वृक्ष से कहा—"वृक्ष! मनुष्य आए दिन तुम पर पत्थर से प्रहार करते हैं, पर तुम तब भी इन्हें फलों का उपहार देते हो, ऐसा क्यों?" वृक्ष हँसा और बोला—"बंधु! मनुष्य भले ही अपना धर्म छोड़ दे, पर मैं अपना धर्म कैसे छोड़ सकता हूँ।"

में से निकाला। मेरा वही मोह प्यार के रूप में बदलता हुआ चला गया। यह प्यार कितना बढ़ा, आपने देखा नहीं? लड़कियाँ जब यहाँ से विदा होती हैं, तो फूट-फूटकर रोती हैं और पाँच-पाँच दिन, सात-सात दिन तक हमको तंग करती हैं। लड़कियाँ आपस में हिल-मिलकर बैठ जाती हैं और कहती हैं कि आपने हमको बेकार बुलाया, इससे तो अच्छा था कि आप हमको नहीं बुलाते। नहीं, माताजी! आपको छोड़ने में हमको बड़ा कष्ट होता है। लड़कियाँ जाती हैं, उनके माँ-बाप ले जाते हैं और हमको भेजना भी पड़ता है। जिंदगी भर सारी लड़कियों को हम कैसे रखेंगे? उनको घर जाना चाहिए

और दूसरा काम करना चाहिए। वही लड़कियाँ यहाँ बैठी रहेंगी, तो नई कहाँ से आएँगी? हमारे पास इतनी जगह कहाँ है? इसलिए हम उनको विदा कर देते हैं।

मित्रो! जब उनकी विदाई होती है, तो उनकी आँखों में किस तरीके से आँसू निकलते हैं, जैसे सगी बेटियाँ रोती हैं, उसी तरीके से विदा होती ये लड़कियाँ रोती हैं। कितनी कशिश है। मित्रो! लाखों मनुष्यों से हमारा मोह जुड़ा हुआ है और हमारा प्यार जुड़ा हुआ है। मोह और कशिश के बंधनों से हमने आपको बाँध रखा है। हमारे पास और कोई चीज नहीं है। विद्या हमारे पास नहीं है। हम आपकी मनोकामना पूर्ण करने में समर्थ कहाँ हुए? आपकी कठिनाइयों को दूर करने में, आपको वरदान और आशीर्वाद देने में कहाँ समर्थ हो सके? आपकी दिक्कतें जहाँ की तहाँ हैं और आपकी कठिनाइयाँ जहाँ की तहाँ हैं। हमारा वरदान आपके क्या काम आया? क्या आप वरदान की वजह से आए हैं? वरदान की वजह से आप नहीं आए। क्यों आते हैं आप? आप हमारे प्यार की कशिश से खिंचे हुए चले आते हैं।

मित्रो! प्यार की यह कशिश आप पैदा कर सकते हैं? हाँ, आप पैदा कर सकते हैं। शर्त केवल यह है कि आपका जो प्यार है, वह छोटे से खानदान के बंधनों में इस कदर जकड़ा हुआ पड़ा है, जिसने आपकी मशक को बाँध दिया है। आप उस दायरे में से निकलिए और उसको आगे बढ़ाना शुरू कीजिए, फिर देखिए कि आपको किस तरह का प्यार मिलता है। किस तरह की कशिश आपके भीतर पैदा होती है। जहाँ कहीं भी आप जाते हैं, लोग आपके पीछे-पीछे लगे हुए चलेंगे और आगे-आगे लगे हुए चलेंगे।

मित्रो! आपको लोगों का मन बदलना है। असल में आपको उनके दिमाग को नहीं बदलना है। दिमाग को बदलने का काम तो हमने कितने वर्ष से कर लिया। 'अखण्ड ज्योति' में हमने कितने लेख छापे हैं और 'युग निर्माण योजना' में लेख छापे हैं और कितनी पुस्तकें छापी हैं। हमसे ऐसी कौन-सी बात बची है, जो हमने छापी नहीं है। हमसे पहले रामायण वाले ने भी छाप दी थी। गीता वाले ने उससे भी पहले छाप दी थी और भागवत वाले ने उससे पहले भी छाप दी थी।

वो सारी की सारी नसीहतें और शिक्षाएँ, जिनको आप वाणी के द्वारा देने के लिए चले हैं, मित्रो! उसमें कानों को आनंद आ जाएगा, आँखों को आनंद आ जाएगा और आपको जानकारियाँ मिल जाएँगी। हमारा दिमाग कहाँ खराब हुआ है? हमारा तो ईमान खराब हुआ है। हम आज भी आदमी के ईमान को बदलना चाहते हैं। दिमाग को हम कब बदलना चाहते हैं? आप किसी से भी मालूम कर लीजिए, दिमाग तो बड़ा चालाक है। आप जैसा निषेध करने को तैयार हैं, वह इससे भी ज्यादा निषेध करने को तैयार है। उसे नसीहतों की जरूरत नहीं है, शिक्षाओं की जरूरत नहीं है, प्रवचनों की जरूरत नहीं है, वरन उन तत्त्वों की जरूरत है, जो आदमी को प्रभावित कर सकते हैं, आदमी के ऊपर बल डाल सकते हैं और आदमी के ऊपर जोर डाल सकते हैं।

मित्रो! वह कहाँ से आएगा? वह कॉपी करने के माद्दे से आएगा। मनुष्य के अंदर एक विशेषता भरी पड़ी है। वह दूसरे आदमियों की नकल करना जानता है। वेश्या अपनी जिंदगी में सैकड़ों-हजारों भड़ुए पैदा कर देती है। क्यों पैदा कर देती है? इसलिए पैदा कर देती है कि उसका जो विचार है, वही उसकी क्रिया भी है। उसके विचार और क्रिया, दोनों मिले हुए हैं। वह जो भी गंदा या अच्छा विचार करती है, क्रिया भी उसी के अनुरूप करती है। विचार और क्रिया, दोनों के सम्मिश्रण का परिणाम यह होता है कि वह अपनी जिंदगी में सौ भड़ुए पैदा कर लेती है। जुआरी अपनी जिंदगी में सौ जुआरी पैदा कर लेता है। शराबी अपनी जिंदगी में सौ शराबी पैदा कर लेता है, लेकिन एक भगत और एक पंडित और एक गुरु और एक ज्ञानी सौ भगत और सौ ज्ञानी पैदा नहीं कर सकता। क्या वजह है? आपने कभी देखा या विचार किया? उसकी एक ही वजह है कि वे ज्ञानी, गुरु और पंडित केवल दिमाग और जबान तक ही अध्यात्म को सीमित रखते हैं, जीवन में उसे प्रवेश नहीं करने देते। हृदय में प्रवेश नहीं करने देते, क्रिया में प्रवेश नहीं करने देते।

अंतःकरण में आने दें अध्यात्म को

मित्रो! ये कहते हैं कि अगर अध्यात्म हमारे हृदय में प्रवेश कर गया, तो मुश्किल खड़ी हो जाएगी और मेरे लोभ एवं मोह में दिक्कत आ जाएगी। इसलिए हम इन दोनों चीजों को जबान की नोंक तक सीमित रखेंगे। जबान की नोंक से गीता का पाठ करेंगे, रामायण का पाठ करेंगे। जबान की नोंक से उपदेश करेंगे, बस, इसे हम केवल कान तक सीमित रखेंगे। हम भागवत सुनेंगे, सत्संग सुनेंगे और कथा-कीर्तन सुनेंगे, बस, इससे आगे नहीं।

बस, दिमाग में जानकारियाँ जमा करेंगे। फलाने स्वामी जी ने कौन से वेद का भाषण किया था और उसके बारे में क्या कहा था? उसका मंत्र क्या होता है? ब्रह्म क्या होता है? जीव क्या होता है? नहीं साहब! हम दिमाग का शिक्षण करेंगे। मित्रो! यह दिमाग की कोई शक्ति नहीं है। यह कानों की कोई शक्ति नहीं है और आँखों की कोई शक्ति नहीं है। शक्ति जो रहती है, वह अंत:करण में रहती है और आपको अपने अंत:करण में अध्यात्म को प्रवेश कराना पड़ेगा। वानप्रस्थ जीवन का यही उद्देश्य है और यही शिक्षण है।

मित्रो! आपकी दिशाएँ हमने यहाँ से बना दी हैं। लक्ष्य हमने यहाँ से बना दिया है। हम कुछ कह नहीं सकते कि आप इसको कब तक पूरा करने में समर्थ होंगे? हमें नहीं मालूम है कि आपकी परिस्थितियाँ क्या हैं? आपके पारिवारिक उत्तरदायित्व क्या हैं? और आपकी जिम्मेदारियाँ क्या हैं? उनको हम छुड़ाना नहीं चाहते और आपको मजबूर करना नहीं चाहते। हम यह चाहते हैं कि आप यहाँ से वैरागी होकर जाएँ। आप मन से वैरागी हो जाएँ। परिस्थितियाँ जब आपको इसके लिए इजाजत दें कि हम पूरे वैरागी होने की परिस्थिति में हैं, तब आप अपना लक्ष्य यही रखना कि हम व्यक्तिगत जीवन नहीं जिएँगे। व्यक्तिगत सुखों की आकांक्षा के लिए नहीं जिएँगे। हमारी कोई व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाएँ नहीं हैं। हमारी व्यक्तिगत सुविधाएँ नहीं हैं। व्यक्तिगत हमारी कोई मनोकामनाएँ नहीं हैं। व्यक्तिगत तमन्नाएँ हमारी नहीं हैं। हमने अपना व्यक्तिगत जीवन खतम कर दिया और अपना सामाजिक और सामूहिक जीवन शुरू कर दिया।

मित्रो! अभी आप ठीक हैं, छोटे से परिवार की जिम्मेदारियों के बंधन में बँधे हुए हैं। आप इसे निभाना। मैं आपको इजाजत देता हूँ कि आप इसे निभाएँ। मैं उन आदमियों में से नहीं हूँ, जो बच्चों को बिलखते हुए, अपनी स्त्रियों को बिलखते हुए और घर की जिम्मेदारियों को छोड़कर बाबा जी हो जाने के लिए कहूँगा। आप अपनी जिम्मेदारियों को बखूबी निभाना। कल तक पूरी करना, परसों तक पूरी करना, साल भर में पूरी करना, पंद्रह साल में पूरी करना। जब परिस्थितियाँ आपको इजाजत दें कि अब आप पूरा वक्त समाज के लिए लगा सकते हैं, लोक-मंगल के लिए लगा सकते हैं, संस्कृति के लिए लगा सकते हैं। देश के लिए लगा सकते हैं, धर्म के लिए लगा सकते हैं, तो आप लगाना। अगर वे परिस्थितियाँ कल आती हैं, तो परसों का इंतजार मत करना। अगर परिस्थितियाँ आपको दस साल तक ठहरने को मजबूर करती हैं, तो आप दस साल से कम पौने दस साल में करने की जल्दबाजी मत करना। आप समय से करना और परिस्थितियों के अनुरूप अपने बंधनों को ढीला करना और अपना समस्त समय लोक-मंगल के लिए और समाज कल्याण के लिए खरच करना।

मित्रो! यह काम तो आप अभी से ही करना और आज से और यहीं से करना कि अपने लोभ और मोह की जंजीरों को कम से कम करना और ढीला करना। इन्हीं ने आपको कषाय और कल्मषों के बंधनों में बाँध कर रखा है। इन्हीं ने आपके प्रभाव डालने की शक्ति को, आपके वर्चस् को और आपके आत्मबल को अवरुद्ध करके रखा है। लोभ और पाप की जड़ यही हैं। संसार में जितने भी लोभ और पाप दिखाई पड़ते हैं, जितने भी अनाचार और बंधन दिखाई पड़ते हैं, वे इन दोनों के ही पैदा किए हुए हैं, तीसरे के पैदा किए हुए नहीं हैं।

जीवन को तपमय बनाएँ, ज्ञानमय बनाएँ

मित्रो! लोभ और मोह इन दोनों की जड़ें आप अपनी मनोभूमि से काटना और इनके विरुद्ध रोज जद्दोजहद करना। रोज आत्मपरीक्षण करना, रोज अपनी समीक्षा करना। रोज अपने आप से सवाल पूछना कि अपने लोभ और मोह के लिए कोई अनावश्यक शक्तियाँ तो खरच नहीं होतीं? सत्संग के लिए आपकी शक्तियाँ खरच होती हों, तो मैं आपको आशीर्वाद देता हूँ और आपको इजाजत देता हूँ कि आप अपने कर्त्तव्य के लिए, जिसमें शरीर का कर्त्तव्य भी शामिल है, घर का कर्त्तव्य भी शामिल है। उसे अवश्य करना, वह भी लोक-मंगल है, लेकिन जो आपकी शक्तियाँ—जिनमें आपके दिमाग की शक्ति है, अक्ल की शक्ति है, आपके मन की शक्ति है और प्रभाव की शक्ति है, अगर वह धंन के लिए और लोभ के लिए खरच होती है; तो आप जितनी जल्दी हो सके और जितनी मुस्तैदी से संभव हो सके और जितनी हिम्मत के साथ हो सके, उनको ढीला करना और काटना। अपने जीवन को तपमय बना देना और योगमय बना देना, भक्तिमय बना देना और ज्ञानमय बना देना।

ज्ञानमय बनाने के लिए मित्रो! आपको वही करना चाहिए, जो मैंने अपनी जिंदगी में किया और प्रत्येक संत ने किया और वही आपको करना पड़ेगा। आप इसकी तैयारी करना। यहाँ से जिन-जिन शाखाओं में हम आपको भेजें, जहाँ आपको भेजें, वहाँ आप तेजस्वी हो करके जाएँ, प्रभावशाली हो करके जाएँ। वैसे हो करके जाएँ, जैसे कि बुद्ध के शिष्य सारे विश्व में गए थे। वे जहाँ भी गए थे, वहीं बौद्ध धर्म की पताका फहराते हुए और उसकी स्थापना करते हुए गए थे। यह प्रभाव उनकी वाणी का नहीं था, उनकी विद्या का नहीं था, वरन यह प्रभाव उनके चरित्र का था। आदमी का आध्यात्मिक चरित्र इन दो बातों पर टिका हुआ है—आदमी का लोभ और मोह किस कदर तक उस पर हावी है। अपने आपका इम्तहान आप भी ले सकते हैं। बाहर वाला क्या जान सकता है कि आपकी परिस्थितियाँ क्या थीं और आप क्या कर सकते थे?

मित्रो! अगर आप दो कामों में समर्थ हो सके, तो मैं आपको योगी कहूँगा और आपको तपस्वी कहूँगा। अगर आप यह दो काम न कर सके और आपने मंत्र, तंत्र और उपासना, भजन और कथा-कीर्तन जान लिया और उसे ही सब कुछ मान लिया, तो मैं आपको सिर्फ पुजारी कहूँगा। पुजारी का प्रभाव हो भी सकता है और आपको सम्मान भी मिल सकता है और आपके अहंकार की पूर्ति हो भी सकती है, लेकिन जो काम आप करना चाहते हैं—अपने आप को शांति देने का, आत्मनिर्माण करने का और सारे विश्व का निर्माण करने का; वह तभी होना संभव है; जबकि आप लोभ और मोह के कुंभकरण को परास्त करने में समर्थ हो सकें।

आज की बात समाप्त।

॥ ॐ शांतिः ॥

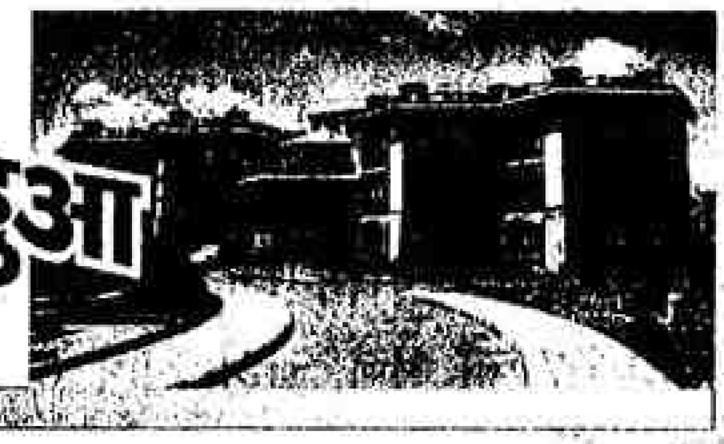
दीपक जल रहा था, घृत चुकने को आया। लौ क्षीण हो चली। वायु के झोंकों ने देखा कि अब दीपक पर विजय पाना आसान है, तो वे वृंद-वृंद मिलकर तेज आक्रमण करने लगे। अंधकार नीचे दबा पड़ा था। यह स्थिति देखकर वह बोला—"दीपक! अब तो तुम्हारा अंत आ गया है। अब कुछ ही देर में यहाँ मेरा साम्राज्य स्थापित हो जाएगा।" दीपक मुस्कराया और बोला—"यह देखना विधाता का काम है कि किसका साम्राज्य होगा। मेरा ध्येय है—प्रकाश बिखेरने के लिए निरंतर जलते रहना, सो अंत समय उससे विमुख क्यों होऊँ।"

इसके थोड़ी देर पश्चात जब अंतिम क्षण आया तो दीपक ने अपनी समस्त शक्तियों को बटोरकर इतना प्रकाश कर दिया कि वहाँ का संपूर्ण अंधकार सिमट कर रह गया, परंतु दीपक का यह बलिदान व्यर्थ नहीं गया; क्योंकि अगले ही क्षण में सूर्योदय की लालिमा वातावरण में छाने लगी थी। प्रकाश के पथ पर अकेले आगे बढ़ने वाले चाहे कितने भी हारते क्यों न लगें, दैवीय संरक्षण सदा उन्हें विजय का श्रेय दिलाता एवं अनगिनत विभूतियों का अधिकारी बनाता है।

►समूह साधना वर्ष◄

विश्वविद्यालय परिसर से — ११०

ज्ञान और विज्ञान की धाराओं से सिक्त हुआ विश्वविद्यालय



विश्वविद्यालय परिसर अपने विद्यार्थियों के समग्र विकास के लिए प्रतिबद्ध है। आचार्यों एवं विद्यार्थियों की सहभागिता से यहाँ निरंतर नई-नई उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं। ध्यान रहे कि यहाँ आध्यात्मिक मूल्यों के साथ-साथ तकनीकी कुशलता का प्रशिक्षण भी सतत चलता रहता है। इसी का प्रतिफल है कि मेरठ (उ० प्र०) में टेक स्पार्क, २०१४ के रूप में संपन्न होने वाली राष्ट्रीय प्रतियोगिता में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के बी० सी० ए० प्रथम वर्ष के छात्र मनन सिंह ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। जे० पी० इन्स्टीट्यूट ऑफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी, मेरठ द्वारा आयोजित इस राष्ट्रीय टेक्नीकल फेस्ट में सी प्रोग्रामिंग क्वीज प्रतियोगिता में देश के अनेक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों के छात्र सम्मिलित हुए थे। इस आयोजन में ही देव संस्कृति विश्वविद्यालय की बी० एस-सी० की छात्रा कनुप्रिया रावत ने भी पोस्टर प्रेजेन्टेशन में द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

कंप्यूटर विभाग के विभागाध्यक्ष ने बताया कि विद्यार्थियों की इन उपलब्धियों ने विश्वविद्यालय के साथ-साथ उत्तराखंड का नाम भी रोशन किया है। उन्होंने कहा कि हमारे विद्यार्थी तकनीकी एवं विज्ञान क्षेत्र की ऐसी राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिता में अनेक पुरस्कार जीत चुके हैं। ऐसी प्रतियोगिताओं में विद्यार्थी को उसकी कार्यकुशलता और त्वरित निर्णय क्षमता ही सफल बनाती है। विजेता रूप में वापस आने पर विद्यार्थियों एवं कंप्यूटर विभाग के साथ गए आचार्यों ने शांतिकुंज में श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या एवं संस्था प्रमुख आदरणीया शैल जीजी से भेंट कर आशीर्वाद प्राप्त किया। विद्यार्थियों ने अपनी जीत का श्रेय श्रद्धेय कुलाधिपति के मार्गदर्शन, आशीर्वाद एवं आचार्यों की मेहनत को दिया।

विश्वविद्यालय के प्रति-कुलपति ने भी छात्र-छात्राओं से मिलकर शुभकामनाएँ प्रदान कीं। इस अवसर पर उन्होंने कहा कि बहुत कम समय में कंप्यूटर विभाग विश्वविद्यालय की 'टेक्नीकल वॉइस' के रूप में उभर रहा है। प्रतिभाशाली शिक्षक और छात्र, दोनों के संयुक्त पुरुषार्थ का यह सुफल है। राष्ट्रीय स्तर पर जाकर किसी तकनीकी संस्थान में आध्यात्मिक संस्कृति को प्रस्तुत करना एवं प्रतियोगी के रूप में शीर्ष स्थान पाकर पुरस्कृत होना एक दुर्लभ दैवीय सुयोग है। यह इस परिसर के लिए एक अत्यंत गौरवशाली क्षण है।

विश्वविद्यालय के कंप्यूटर विभाग द्वारा ही २३ अप्रैल को 'टेक्नो ज्ञान—२०१४' एक दिवसीय प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस प्रतियोगिता में निकटस्थ संस्थानों के ३०० से अधिक छात्र-छात्राओं ने भागीदारी की। इसके अंतर्गत बी० सी० ए०, बी० एस-सी०, एम० एस-सी० कंप्यूटर साइंस के छात्र-छात्राओं ने टेक्नो क्विज, ई-केनवस, सॉफ्टवेयर आदि तकनीकों द्वारा अपने कौशल व क्षमता का प्रदर्शन किया। इनमें से श्रेष्ठ प्रस्तुति देने वाले २१ विद्यार्थियों को दूरस्थ शिक्षा विभाग के निदेशक द्वारा पुरस्कृत किया गया। कार्यक्रम के अवसर पर कुलसचिव ने कहा कि यहाँ विद्यार्थियों में हमेशा कुछ अलग और नया करने का जज्बा दिखाई देता है। ऐसी प्रतियोगिताएँ विद्यार्थियों के सृजनात्मक और रचनात्मक विकास में अत्यंत कारगर हैं।

विश्वविद्यालय परिसर सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए भी दृढ़ संकल्पित और सतत प्रयत्नशील है। अप्रैल के प्रथम सप्ताह में यूरोपियन फिल्म फेस्टिवल का आयोजन संपन्न कर लोकरंजन से लोक-मंगल के क्षेत्र में एक नई पहल की गई है। उत्सव का शुभारंभ करते हुए श्रद्धेय कुलाधिपति जी ने विश्वविद्यालय के इस कदम की बड़ी सराहना की और कहा कि इससे निश्चित ही विद्यार्थियों के विकास में सहायता मिलेगी। उत्सव में यूरोपियन देशों की उन्हीं चयनित फिल्मों को दिखाया गया, जो विद्यार्थियों के लिए उपयोगी और व्यक्तित्व विकास में सहायक हैं।

इस यूरोपियन फिल्म महोत्सव में जो फिल्में दिखाई गईं, वे सभी यूरोपियन देशों में पुरस्कृत की गई हैं। मुख्य अतिथि यूरोपियन यूनियन इन इंडिया के सहायक प्रमुख डॉ० पॉवेल स्वीटिल ने कहा कि ये फिल्में विशेष रूप से

विद्यार्थियों के मार्गदर्शन एवं विकास के लिए ही बनाई गई हैं। ये सभी फिल्में युवाओं को सांस्कृतिक उत्थान के लिए प्रेरित करने वाली हैं। विश्वविद्यालय के प्रति-कुलपति जी ने कहा कि इस महोत्सव के माध्यम से फिल्मों द्वारा युवाओं को नया संदेश दिया गया है। उन्होंने बताया कि भारत में अब तक यूरोपियन फिल्मों का प्रदर्शन देश के प्रमुख संस्थानों में ही होता रहा है, इस परिसर में इस तरह का विशेष आयोजन पहली बार है। इस तरह के आयोजन से विद्यार्थियों में संस्कृति निष्ठा तो जाग्रत होगी ही, साथ में विश्वविद्यालय के लिए यूरोप देशों में भी नए आयाम खुलेंगे।

विश्वविद्यालय परिसर अपनी गतिविधियों में अनूठे प्रयोगों और नए आयामों के लिए सदैव तत्पर है। ये प्रयोग यहाँ की जीवनचर्या से लेकर सैद्धांतिक और प्रायोगिक स्तर के सभी पाठ्यक्रमों में दिखाई देते हैं। ऐसा ही एक प्रयोग स्वास्थ्य के क्षेत्र में प्राण चिकित्सा को लेकर संपन्न किया गया है। यह प्रयोग योग एवं स्वास्थ्य विभाग द्वारा सात दिवसीय प्राणिक हीलिंग कार्यशाला के रूप में संपन्न किया गया। २० से २६ मई तक की इस कार्यशाला का शुभारंभ विश्वविद्यालय के प्रति-कुलपति द्वारा किया गया। उन्होंने प्रतिभागियों को संबोधित करते हुए कहा कि प्राणिक हीलिंग एक ऐसी प्राचीन विधा है जो हमें अपने प्राणों का संवर्द्धन करने की ओर प्रेरित करती है। प्राणों के संवर्द्धन से ही हम मानवीय जीवन में व्याप्त कल्मष-कषायों का निवारण कर सकते हैं।

योग विभाग के विभागाध्यक्ष ने बताया कि इस कार्यशाला में विषय विशेषज्ञ डॉ० स्वर्णमाला द्वारा प्राणिक हीलिंग की बेसिक, एडवांस व साइकोथेरेपी तकनीकों का प्रशिक्षण प्रदान किया गया। इस कार्यशाला में देश के विभिन्न क्षेत्रों से आए लगभग ६० प्रतिभागियों ने भाग लिया। विषय विशेषज्ञ के अनुसार, प्राणिक हीलिंग विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर कर प्राणतत्त्व का विस्तार करती है। विद्यार्थियों की पढ़ाई और एकाग्रता के लिए भी यह पद्धति अत्यंत उपयोगी है। विश्वविद्यालय के प्राणिक हीलिंग प्रभाग की समन्वयक ने कहा कि यह कार्यशाला सभी के लिए अत्यंत लाभकारी है। प्राणिक हीलिंग से संपूर्ण स्वास्थ्य में सकारात्मक परिवर्तन होता है और हम आशावादी जीवन की ओर प्रेरित होते हैं। इसमें भाग लेने वाले सभी प्रतिभागियों को योग एवं स्वास्थ्य विभाग द्वारा प्रमाणपत्र भी प्रदान किए गए।

यह परिसर इस तरह के नए अनूठे कार्यों एवं आयोजनों द्वारा सतत उस महान आदर्श और लक्ष्य की ओर अग्रसर है, जिसे इसे अपने कुलपिता ने सौंपा है। महानतम आदर्शों और श्रेष्ठतम लक्ष्यों के लिए अहर्निश-अनवरत बढ़ते रहना ही तो जीवन का सार है, देव संस्कृति की यही पहचान है।

टाल्या के आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कुछ लोगों ने उसे रंगमंच पर अभिनय के लिए खड़ा कर दिया, पर उससे एक शब्द न बोलते बना। दोबारा सिफारिश पाकर वह फिर से रंगमंच पर पहुँचा, पर इस बार भी उसका वही हश्र हुआ। अब उसे लोगों ने अपमानित करना प्रारंभ कर दिया।

टाल्या ने फिर भी हिम्मत न हारी और वह छोटे-छोटे पात्रों के अभिनय करते-करते प्रसिद्ध अभिनेता बन गया। तब किसी ने उससे पूछा—"आपकी सफलता का रहस्य क्या है?" तो टाल्या ने उत्तर दिया—"जितनी बार गिरो, उतनी बार उठो।" सत्य यही है कि गिरकर के उठने वाले ही जीवन में सफल होते हैं।

►समूह साधना वर्ष◄

क्या परिपक्व बन पाए हम?

क्या हम प्रौढ़ हैं ?

क्या हम प्रौढ़ हो चुके हैं ? यह सवाल अपने से है और आप से भी। अपने परिजनों को इस प्रश्न के परिप्रेक्ष्य में अपनी समीक्षा करनी है। हम सभी वर्षों से परमपूज्य गुरुदेव के चिंतन एवं उनकी चेतना से सिंचित होते रहे हैं। अब तक हम सबके जीवन में इसके परिणाम प्रौढ़ता व परिपक्वता के रूप में अवश्य आने चाहिए थे। बात शारीरिक प्रौढ़ता की नहीं की जा रही है। शरीर से प्रौढ़ हो जाना एक बात है और व्यक्तित्व की दृष्टि से प्रौढ़ हो जाना दूसरी।

स्वामी विवेकानंद, आदिशंकराचार्य एवं संत ज्ञानेश्वर ऐसे व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने कम आयु में अपने व्यक्तित्व की प्रौढ़ता का परिचय दिया। उनसे मार्गदर्शन पाकर मानवता कृतार्थ हुई। इसके विपरीत बहुत से वयोवृद्ध ऐसे हो सकते हैं, जिनके दृष्टिकोण, अनुभव एवं रुझान को देखते हुए उन्हें बालबुद्धि एव बचकाना कहना ही पड़ता है; जबकि अभी जिन महामानवों की चर्चा की गई उनके न तो बाल सफेद हुए थे, न उनकी आयु अधिक हुई थी। फिर भी वे उस मन:स्थिति में जा पहुँचे थे, जहाँ उनकी प्रौढ़ता व परिपक्वता असंदिग्ध थी।

मनुष्य जीवन की गरिमा है प्रौढ़ता

यह प्रौढ़ता मनुष्य जीवन की, आध्यात्मिक व्यक्ति की गरिमा है। उसी के आधार पर जीवन का मूल्यांकन होता है। श्रेयस्कर सफलताएँ इस आंतरिक प्रौढ़ता के बिना प्राय: मिल ही नहीं पातीं। इसका प्रथम चिह्न है कि हम भावुकता को सुरक्षित रखते हुए उसे अति की सीमा में न जानें दे। मस्तिष्क पर उफानों के इतने बादल न जमने दें कि जिनसे वस्तुस्थिति बताने वाली विवेकशीलता ही गायब हो चले।

प्रिय व अप्रिय परिस्थितियाँ प्राय: हर किसी के जीवन में आती हैं। सज्जनों की तरह दुर्जनों से भी पाला पड़ता है। सफलताओं की तरह असफलताएँ भी मिलती हैं। इस धूप-छाँह को ध्यान में रखना चाहिए। कठिनाइयों का हल निकालने और क्षति की पूर्ति करने के लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिए, लेकिन ऐसी स्थिति नहीं आने देना चाहिए कि किन्हीं अप्रिय प्रसंगों के कारण अपना मानसिक संतुलन ही गड़बड़ा जाए।

हर कठिनाई अपना हल पूछती है। आशंकाएँ रोक-थाम का उपाय जानना चाहती हैं। जो क्षति हो चुकी, अब उसकी क्षति-पूर्ति का उपाय ही अभीष्ट है। जो बीत चुका वह अब वापस नहीं लौट सकता, इसलिए शोक संताप में डूबे रहने से क्या लाभ? भविष्य में कठिनाई आने वाली है इसकी चिंता करते रहने से बनेगा क्या? आक्रमण की संभावना है तो उस आतंक से भयभीत होने से क्या प्रयोजन सधेगा?

संतुलित हो मन:स्थिति तो निकलेंगे समाधान

अवरोधों को तो अपना समाधान चाहिए और वह तभी निकल सकेगा, जब मन:स्थिति संतुलित बनी रहे। आवेशग्रस्त असंतुलित मस्तिष्क के लिए सही समाधान ढूँढ़ना न केवल कठिन है, बल्कि असंभव है। जब मानसिक स्थिरता रखने जैसा सरल काम नहीं बन पड़ा तो समाधान के साधन जुटाने का कार्य कौन करेगा? हर हालत में मानसिक स्तर ऐसा होना चाहिए, जिसके सहारे प्रगति के उपाय और अवरोधों के समाधान ठीक तरह से खोजे जा सकें। इसके लिए आवेशरहित मस्तिष्क ही कारगर है।

आवेश तो स्वयं ही एक विपत्ति है, जो अकारण नई-नई कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है। उसके कारण ऐसे अवांछनीय कदम उठते हैं, जो नई विपत्तियाँ गढ़ लेते हैं। समाधान के स्थान पर नई समस्याएँ उत्पन्न करने वाला यह असंतुलन अपरिपक्वता का चिह्न है। इसे नियंत्रित करके ही हम प्रौढ़ता से गौरवान्वित हैं। अपनी इस प्रौढ़ता को प्यार व उपकार करने की सामर्थ्य पर भी परखा जाना चाहिए।

प्यार व उपकार हर इनसान की जरूरत है। दूसरों से हर किसी को इसी की अपेक्षा रहती है। भले ही वह स्वयं वैसा न कर पाता हो, पर औरों से ऐसी ही अपेक्षा रखता है। इस प्रकार की अपेक्षा करने वालों में हम सब स्वयं भी सम्मिलित हैं। हर वस्तु का सुनिश्चित मूल्य होता है। हम

दूसरों को प्यार और उपकार की मधुरता प्रदान करेंगे तो बदले में उसकी प्रतिक्रिया का लाभ भी उठा सकेंगे।

आत्मीयता दें, उदार बनें

स्वयं नीरस रहेंगे, अनुदार बनेंगे तो दूसरों से सरसता की, सद्भावना की अपेक्षा नहीं कर सकते। इस अभाव से स्वयं को अनवरत निराशा ही मिलेगी। साथ ही हम अपने साथियों की थोड़ी-सी भी सहायता न कर सकेंगे, जो प्यार भरी उदार मनोभूमि रखने पर सहज ही बन पड़ती। अनुदारता बच्चों के लिए क्षमा योग्य हो सकती है, पर प्रौढ़ों के लिए तो कतई नहीं। प्यार तो बच्चे भी करते और पाते हैं।

प्रौढ़ों से उतना भी न बन पड़े तो यह दुखद है। अपने मतलब से मतलब रखने और दूसरों की उपेक्षा करने से मनुष्य असामाजिक बनता चला जाता है। केवल अपने बारे में सोचना, दूसरों के सुख-दुःख में भागीदार न होना भावनात्मक शून्यता का लक्षण है। प्रौढ़ता की यह विशेषता होनी चाहिए कि उसमें अधिक सामाजिकता समाविष्ट हो। व्यवहार में उदारता, मृदुलता एवं आत्मीयता का पर्याप्त पुट हो। ऐसे व्यक्ति दूसरों को सद्भाव देते हैं, और बाद में उनका यही सद्भाव अपने आप ही बढ़ी-चढ़ी मात्रा में उनके पास वापस लौट आता है।

आत्मसमीक्षा से करें प्रौढ़ता की शुरुआत

प्रौढ़ता—परिपक्वता अर्जित करने का सरल तरीका आत्मसमीक्षा है। अपने कामों की भूल ढूँढ़ने और सुधारने का कार्य साथियों की सहायता से किया जाना संभव है। मित्रगण मित्रता का निर्वाह करते हुए भूलों को बताने और सुधारने का उपाय बता सकते हैं। हालाँकि काम इतने से चलने वाला नहीं है। भूलों से कहीं अधिक घातक होते हैं बुरे इरादे। इनके दुष्परिणाम ज्यादा बुरे व हानिकारक होते हैं। दरअसल हमारी नीयत में भ्रष्टता के तत्त्व घुस पड़ते हैं। बाद में ये ही जाने-अनजाने ऐसे कृत्य कराते हैं, जिन्हें भूलें कह देने भर से काम नहीं चलता। दुष्ट इरादों का विष इनमें साफ झलकता है।

ये इरादे ही मनुष्य के वास्तविक व्यक्तित्व का सृजन करते हैं। चिंतन इसी आधार पर दिशा पकड़ता है और गतिविधियों का निर्माण इसी प्रेरणा से बन पड़ता है। इन इरादों की सकारात्मकता को ही अध्यात्म की भाषा में श्रद्धा, आस्था आदि नामों से पुकारा जाता है। मनोविज्ञान की भाषा में इन्हें संचित संस्कार, दृष्टिकोण एवं अभ्यस्त आदतें कहते हैं। ईमान या नीयत इसी का नाम है।

निष्पक्ष हो आत्मनिरीक्षण

इसी के आधार पर हम क्या सोचते हैं और क्या करते हैं, इसकी पृष्ठभूमि बनती है। अपने इरादों का सही स्वरूप मनुष्य स्वयं ही समझ सकता है। यदि ये अनैतिक व असामाजिक हैं तो उनका निराकरण स्वयं ही करना चाहिए। प्रौढ़ता इसी आत्मशोधन का कार्य साहसपूर्वक संपन्न करती है। आत्मनिरीक्षण के लिए निष्पक्षता की जरूरत होती है। जिस प्रकार दूसरों का पर्यवेक्षण तीखी दृष्टि से किया जाता है, उसी से अपना भी किया जा सके तो वे कमियाँ भी समझ में आती हैं, जो सामान्य क्रम में दिखाई ही नहीं पड़तीं।

अनेकानेक दोष-दुर्गुणों, कषाय-कल्मषों का वर्गीकरण, विभाजन करने पर उनकी संख्या हजारों में हो सकती है, पर उनके मूल उद्गम यही तीन लोभ, मोह और अहंकार हैं। इन्हीं भवबंधनों से मनुष्य के स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीर जकड़े पड़े हैं। इनका उन्मूलन किए बिना आत्मा को उस स्वतंत्रता का लाभ नहीं मिल सकता, जिसे मोक्ष कहते हैं।

—परमपूज्य गुरुदेव

स्वभाव का अंग बन जाने से, अभ्यास में आते रहने से ये इतनी आत्मसात् हो जाती हैं कि यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि अपने में कुछ कमियाँ भी हैं। आत्मसमीक्षा का पहला चरण यह है कि अपनी नीयत में मानवीय स्तर से नीचे के जो भी तत्त्व घुसे पड़े हों उन्हें समझा जाए और उन्हें निरस्त करने का दृढ़ निश्चय किया जाए। आंतरिक प्रौढ़ता में मानवीय आदर्शवादिता और उत्कृष्टता के तत्त्वों का समुचित समावेश होना अति आवश्यक है। निकृष्टता अंतःकरण में घुसी रहेगी तो कभी कोई मनुष्य व्यक्तित्व की दृष्टि से प्रौढ़ परिपक्व न हो सकेगा।

►समूह साधना वर्ष◄

साहस के साथ सुधार करें

आत्मसमीक्षा का उत्तरार्द्ध यह है कि जिन सद्‌गुणों के आधार पर मनुष्य ऊँचे उठते और आगे बढ़ते रहे हैं, उनकी आवश्यकता स्वयं के लिए अनुभव की जाएँ। साथ ही इन्हें स्वभाव का अंग बनाने के लिए जुट जाया जाए। यह प्रयास तब तक जारी रहना चाहिए, जब तक वे पूरी तरह से स्वभाव के सहज अंग न बन जाएँ। प्राय: अपने बारे में लोग कायरतापूर्ण विचारों से भरे रहते हैं। जिस तरह दुस्साहस भरे काम करने के लिए सोचने में डर लगता है, उसी प्रकार खरा व्यक्तित्व बनाने के लिए जिस साहस व प्रखरता की जरूरत पड़ती है, उसका विकसित होना कठिन लगता है। छोटे-छोटे सत्संकल्प जब नहीं निभ पा रहे तो फिर बड़े संकल्प कैसे निभ सकेंगे। यह आशंका हमेशा मन में छाई रहती है। ऐसी स्थिति में डरते-काँपते हुए मन से जो किया जाता, वह पूरा नहीं हो पाता।

दृढ़ संकल्पशक्ति का पर्याय है प्रौढ़ता

प्रौढ़ता का एक पर्याय संकल्पशक्ति का दृढ़ होना भी है। परिपक्व व्यक्तित्व के लिए संकल्पशक्ति अनिवार्य है। दृढ़ निश्चय और आत्मविश्वास के साथ सद्‌गुणों की संपदा उपार्जित करने के लिए कदम बढ़ाए जाएँ तो उनके पूरे होने में फिर कोई कठिनाई शेष न रह जाएगी। बहुत से लोग ऐसे हुए हैं, जिनमें पहले कुछ भी विशेषता नहीं थी और उन्हें अयोग्य समझा जाता था। यहाँ तक कि उनकी संरचना को ही घटिया मान लिया गया था, पर जब वे कुछ करने व बनने के लिए कटिबद्ध हो गए तो असफलताओं और अवरोधों के होते हुए भी उनका रास्ता रुका नहीं।

झगड़ते-जूझते, गिरते-पड़ते जिन्होंने प्रगति के प्रयास जारी रखे, वे सफलता की ऊँची मंजिल तक पहुँचकर रहे हैं। प्रौढ़ता व परिपक्वता का परिचय इसी से मिलता है। वैसे भी प्रौढ़ता के साथ जुड़ी सक्रियता यों ही मस्तिष्क की कोठरी में कैद होकर नहीं रहती, बल्कि दोनों मोर्चों पर संघर्षरत रहती है। एक ओर अपने घटियापन के उन्मूलन के लिए तो दूसरी ओर अपनी श्रेष्ठताओं के संघर्ष के लिए। इन प्रबल प्रयासों में तत्पर व्यक्ति को, आत्मोत्कर्ष की साधना में निरत प्रौढ़ व्यक्तित्व वाला मनस्वी या तपस्वी कहा जा सकता है।

आशावादी बनें, आतुर नहीं

परमपूज्य गुरुदेव कहा करते थे—प्रौढ़ व्यक्ति आशावादी तो होते हैं, पर आतुर नहीं। वस्तुओं को तोड़-फोड़कर दूसरे रूप में बदलना जल्दी संभव हो सकता है, पर मनुष्यों या परिस्थितियों को अपनी इच्छानुरूप, तुरंत ढल जाने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। कोशिशें जारी रहें, जितना सत्परिणाम निकले उस पर संतोष व्यक्त करते हुए आगे की चेष्टा और भी अधिक उत्साह के साथ करनी चाहिए।

समय के बारे में आतुर नहीं होना चाहिए। परिवर्तन दूसरों के सहयोग, साधन एवं परिस्थितियों पर निर्भर है। जो बात अपने हाथ में नहीं, उसके लिए आतुरता क्यों बरती जाए। धर्म, धैर्य एवं साहस के संयोजन सम्मिलन से प्रौढ़ता का परिचय मिलता है। बीज बोने के दिन से लेकर छायादार वटवृक्ष बनने में उगाने वालों को सतर्क श्रम ही नहीं करना पड़ता, बल्कि उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा भी धैर्यपूर्वक करनी पड़ती है। ऐसे लोगों पर निराशा के अंधड़ का आक्रमण नहीं होता, बल्कि उनकी आशाओं का दीपक जलते रहकर उज्ज्वल भविष्य का आश्वासन देने वाला प्रकाश बनाए रखता है।

महत्त्वहीन है निंदा या प्रशंसा

प्रौढ़ व्यक्तित्व वाले दूसरों के मुँह से अपनी प्रशंसा सुनने के लिए व्याकुल नहीं रहते, न निंदा सुनकर विक्षुब्ध होते हैं। संसार में अनगिनत मनुष्य रहते हैं और उनकी आकृति ही नहीं, प्रकृति भी एकदूसरे से भिन्न होती है। वस्तुस्थिति को समझकर समीक्षा करने का अवसर उनके पास नहीं होता। ऐसी स्थिति में लोगों के मुँह से कही-सुनी जाने वाली निंदा या प्रशंसा प्राय: एकांगी, उथली व अवास्तविक होती है। इस अबोध उच्चारण से प्रसन्न या अप्रसन्न होने में कोई बुद्धिमानी नहीं है।

बहुत से लोग अपने स्वार्थ व निजी हितों के लिए चाटुकारी करने की कला में निष्णात होते हैं। ऐसे लोग झूठी प्रशंसा करके मैत्री जोड़ते और उसका लाभ उठाते देखे जाते हैं। प्रशंसा को ये लोग कला की तरह इस्तेमाल करके सामने वाले की मानसिक दुर्बलता का लाभ उठाते हैं। ऐसी प्रशंसा के लिए लालायित रहना और उसके आधार पर अपने बड़प्पन पर गर्व करना व्यर्थ है। इसी तरह निंदा के कारण शत्रुता, ईर्ष्या, गलतफहमी, इधर-उधर की बातों पर यकीन करना जैसे अनेक तत्त्व हो

सकते हैं। इस तरह की निंदा सुनकर अपने मनोबल को गिरा देना अथवा किसी आत्महीनता से घिर जाना व्यर्थ है।

निंदा या प्रशंसा का महत्त्व बस, इतना ही नहीं कि जो कहा जा रहा है उसे धैर्यपूर्वक सुना जाए और यह देखा जाए कि उन प्रिय-अप्रिय बातों में सचाई का अंश कितना है ? जितनी यथार्थता हो उससे प्रकाश ग्रहण किया जाए। प्रशंसा से अपने गुणों को बढ़ाने और निंदा से अनुपयुक्त को सुधारने की प्रेरणा ली जाए। कहने वाले तो अपनी मन:स्थिति के अनुरूप कुछ न कुछ कहते ही रहते हैं, इसलिए उन पर ज्यादा ध्यान न देकर अपने काम में लगे रहना बेहतर है।

बचकानी बुद्धि निंदा-प्रशंसा को बहुत महत्त्व देती है और उतने मात्र से अपना संतुलन गँवाती रहती है। प्रौढ़ता का परिचय तो इस बात में है कि लोगों द्वारा की गई निंदा-प्रशंसा को वस्तुस्थिति समझने और भावी सुधार-परिवर्तन के लिए कुछ प्रेरणाप्रद तत्त्व हों तो उन्हें शिरोधार्य करके शेष को कूड़े-कचरे की तरह बुहार फेंकना उचित है। इसमें बेकार दिमाग उलझता है और अपनी सामान्य गतिविधियाँ जारी रखने में भारी कठिनाई उत्पन्न होती है।

गुरुतर दायित्व के लिए प्रौढ़ बनें हम

प्रौढ़ता के संबंध में ये ऐसी बाते हैं, जिनके प्रकाश में परिजनों को स्वयं की पड़ताल करना चाहिए। हम सब इतने वर्षों तक निरंतर परमपूज्य गुरुदेव के चिंतन व चेतना के सान्निध्य में रहे हैं, परंतु इसका परिणाम हमारे स्वयं के जीवन में क्या आ सका ? इसकी पड़ताल अभी इन्हीं क्षणों में करना चाहिए। परखना चाहिए अपने आप को कि इतने सालों में हम बड़े हो सके, बढ़ सके अथवा बच्चे ही हैं। ध्यान रहे बच्चों के साथ हँसी-मसखरी, खेल-खिलवाड़ तो संभव है, पर गंभीर कार्यों में उनकी भागीदारी-साझेदारी संभव नहीं है।

वर्तमान समय में युगांतर चेतना हमें गुरुतर दायित्व देना चाहती है। इसके लिए हममें से हरेक का प्रौढ़ होना जरूरी है। आत्मसंतोष, आत्मगौरव और आत्मकल्याण की संभावनाएँ इसी में हैं। व्यक्तित्व में महानता का समावेश, जीवन की सच्ची सफलता और वास्तविक सार्थकता इसके बिना नहीं है। अनुकरणीय व प्रेरक व्यक्तित्व से ही हम महाकाल की चेतना के संवाहक एवं पूज्य गुरुदेव के सच्चे लीलासहचर कहे जाने का गौरव अर्जित कर सकेंगे।

ब्राह्मणपुत्र ब्रह्मचर्याश्रम की अवधि पूर्ण करके घर लौटा। आँगन में आकर माता के चरणस्पर्श किए और पूछा—"पिता जी कहाँ हैं ?" माता ने कहा—"वे अंदर हैं।" पुत्र अंदर गया, पर पिता जी वहाँ नहीं थे और पीछे का दरवाजा खुला हुआ था, जैसे वे वहाँ से कहीं चले गए हों। पूरा वर्ष बीतने पर उसके पिता घर लौटे। पुत्र ने पूछा—"पिता जी! आप हमें छोड़कर इतने दिनों कहाँ चले गए थे ?" पिता ने कहा—"पुत्र! जब तुम अपनी शिक्षा-दीक्षा पूर्ण करके घर आए थे तो मैंने तपस्या से जगमगाते हुए तुम्हारे ललाट को देखा। उस समय मुझे ऐसा लगा कि मैं तुम्हारा प्रणाम स्वीकार करने योग्य नहीं हूँ। अतएव तपस्या करने हेतु वन चला गया। एक तपस्वी का प्रणाम ग्रहण करने योग्य पात्रता अर्जित करने के पश्चात लौट आया। अब तुम सहर्ष मेरे चरण छूकर आशीर्वाद ले सकते हो।" वस्तुतः प्रणाम लेने का अधिकार उसे है, जो प्रणाम करने वाले से अधिक योग्य हो।

संस्कृति के आधारस्तंभ

गौ, गंगा, गीता, गायत्री, अति पावन ये चार हैं,
पर गुरु होते सुरसंस्कृति के पावनतम आधार हैं।

गौ, गंगा हैं पुण्यदायिनी, गीता कर्म सिखाती है,
गायत्री मानवी बुद्धि को सत्पथ पर ले जाती है,

गुरु की कृपा-प्राप्ति से होते शुभ आचार-विचार हैं।
सद्गुरु होते सुरसंस्कृति के पावनतम आधार हैं।

गुरु से जुड़कर संस्कारों का जन्म हृदय में होता है,
सुरसंस्कृति के लिए मनुज मन में सद्भाव सँजोता है,

रग-रग से बहने लगतीं फिर पावन करुणा-धार हैं।
सद्गुरु होते सुरसंस्कृति के पावनतम आधार हैं।

सद्गुरु परमेश्वर को पाने का पथ हमें दिखाते हैं,
जहाँ कहीं उलझन होती है, सहज उसे सुलझाते हैं,

कदम-कदम पर करते रहते वह हम पर उपकार हैं।
सद्गुरु होते सुरसंस्कृति के पावनतम आधार हैं।

अपने संचित तप का सद्गुरु अंश शिष्य को देते हैं,
श्रेष्ठ आचरण वाले होते उनके बहुत चहेते हैं,

वसुंधरा लगती फिर उनको अपना ही परिवार है।
सद्गुरु होते सुरसंस्कृति के पावनतम आधार हैं।

गुरु के सच्चे शिष्य पात्रता अपनी सतत बढ़ाते हैं,
जितना ऊँचा काम उच्च वे उतने ही हो जाते हैं,

अपने लिए कठोर, अन्य को रहते बहुत उदार हैं।
सद्गुरु होते सुरसंस्कृति के पावनतम आधार हैं।

—शचीन्द्र भटनागर

►समूह साधना वर्ष◄